ओ३म्
अरब में सात साल
अर्थात्
[अरब में वैदिक धर्म का प्रचार]
तुर्कमेनिस्तान
ताजिस्तान
अफ़गानिस्तान
ईराक
ईरान
जोरडन
पाकिस्तान
क्यतार
यू.ए.ई
सऊदी अरब
भारत
ओमान
यमन
पं० रुचिराम आर्योपदेशक

ओ३म्
अरब में सात साल
अर्थात्
[अरब में वैदिक धर्म का प्रचार]
तुर्कमेनिस्तान
ओ३म्
ओ३म्
अफ़गानिस्तान
ईराक
ईरान
ओ३म्
ओ३म्
पाकिस्तान
जोरडन
ओ३म्
क्यतार
यू.ए.ई
सऊदी अरब
भारत
ओमान
यमन
पं० रुचिराम आर्योपदेशक

प्रकाशक : सत्यधर्म प्रकाशन
चलभाष : ०९२१३३-२६५५२, ०९८१२५-६०२३३

संस्करण : २०१५ई०

मूल्य : ७०.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. हरयाणा साहित्य-संस्थान
महाविद्यालय गुरुकुल, झज्जर-१२४ १०३ (हरयाणा)
२. आर्यसमाज मन्दिर, काकरिया
रायेपुर दरवाजे से बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)
३. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा
जिला ज्योतिनगर (मुरादाबाद) उत्तरप्रदेश
४. आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा,
अहमदाबाद (गुजरात)
५. दयानन्दमठ दीनानगर, जिला गुरदासपुर (पंजाब)
चलभाष : ०९४१७३-३६६७३
६. आचार्य प्रकाशन, दयानन्दमठ, गोहाना रोड,
रोहतक-१२४ ००१ (हरियाणा)

शब्द-संयोजक : स्वास्ति कम्प्यूटर्स, कैलाशनगर, दिल्ली-३१
दूरभाष : ०९२११३-६२७३३, ०९२५५९-३५२८९

मुद्रक : राधा प्रेस, कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१

ओ३म्

समर्पण

मेरी इस यात्रा की प्रेरणा का श्रेय
मेरे पूज्य आचार्य परमहंस परिव्राजक
श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज
को है। केवल प्रेरणा ही नहीं, आप अरब के
शहरों में मेरे साथ विस्तृत पत्र–व्यवहार
करके अमूल्य सम्मति भेजते रहे।
इसलिए यह श्रद्धा का फूल
'अरब में सात साल'
नामी पुस्तक, आपके चरणों में
समर्पण करता हूँ।

—रुचिराम आर्योपदेशक

प्रकाशकीय

आर्यसमाज में अनेक ऐसे उपदेशक-प्रचारक हुए हैं जिन्होंने कष्टों की परवाह न करते हुए देश-विदेश में आर्यत्व का प्रचार किया है। उनमें से एक प्रचारक थे—श्री रुचिराम जी आर्योपदेशक। श्री रुचिराम जी ने आर्यत्व की भावना से ओतप्रोत होकर विदेश में प्रचार करने का निश्चय किया और उस निश्चय को पूरा भी किया।

पाठक जानते हैं कि अरब-देश मुसलमानों से आवासित देश हैं जो प्रायः धर्मान्ध होते हैं। उनमें दूसरे किसी धर्म का प्रचार कार्य करना जान हथेली पर लेकर चलना है। ऊपर से वहां का भौगोलिक वातावरण असुविधा और कष्टपूर्ण रहा है। ऐसी आपत्तिपूर्ण और कष्टभरी परिस्थितियां होते हुए भी श्री रुचिराम जी ने वहां की भूमि पर प्रचार कार्य किया। ऐसे ही दीवाने प्रचारकों के लिए किसी कवि ने ये पंक्तियां लिखी थीं—

आयेंगे खत अरब से उनमें लिखा ये होगा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है॥

श्री रुचिराम से गुरुकुल के ब्रह्मचारी भले ही न रहे हों, किन्तु गुरुकुल-परम्परा के संस्थापक आचार्य दयानन्द सरस्वती के तो शिष्य थे ही। यह पुस्तक जहां श्री रुचिराम जी के अथक परिश्रम की हमें जानकारी देगी वहीं भावी उपदेशकों का मार्गदर्शन भी करेगी।

—आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक

आर्य मित्रों से

ऐसे समय में जब कि आर्यसमाज का डङ्का देश के कोने-कोने में बज रहा है और हिन्दू मात्र इसके अधिकाधिक प्रचार की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, हमें उचित है कि विदेशों में भी इसके प्रचार की ओर ध्यान दें। मैंने सात वर्ष पैदल चलकर अरब में वैदिक धर्म का प्रचार किया और कई एक स्थानों पर आर्य-समाजें स्थापित कीं। इस लम्बे प्रचार के बाद मैं कह सकता हूँ कि आर्यसमाज के प्रचार के लिए अरब और अन्य इस्लामी देशों में एक विस्तृत क्षेत्र विद्यमान है।

इस पुस्तक में मैंने बतलाया है कि हम किस प्रकार अरब आदि देशों में प्रचार कर सकते हैं और वहां जाने-आने के मार्ग कौन-कौन से हैं।

मैंने जो कुछ प्रचार वहां किया है उसे केवल अंकुर स्वरूप ही समझना चाहिये। मैं अरब के किसी एक शहर में बैठ कर प्रचार करना नहीं चाहता था। मेरी यात्रा का अभिप्राय केवल यह देखना था कि हम किस प्रकार अरब की भूमि में वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं। जहां-जहां मेरा प्रभाव पड़ चुका है, आर्यसमाजें स्थापित हो चुकी हैं, वहां भी भारतवर्ष से उपदेशकों का जाना आवश्यक है। अब आर्य पुरुषों और सभाओं का धर्म है कि वे अरब में प्रचार के कार्य में मेरा हाथ बटावें।

मैं जब से अरब से लौटा हूँ तब से मेरी यह प्रबल इच्छा रही है कि एक बार फिर अरब में जाकर उस पौधे को सीचूँ, जिसका बीज मैंने पिछले सात वर्ष में वहां की भूमि में डाला है। इधर पिछले कई मास के अनुभव से मुझे ज्ञात हुआ है कि यदि मैं इस कार्य में सहायता के लिए किसी व्यक्ति विशेष अथवा सभा पर निर्भर रहा तो मेरी यह इच्छा न जाने कब पूर्ण हो। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि पहले की तरह केवल ईश्वर पर भरोसा रखकर निकट भविष्य में अरब में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जाऊंगा।

—रुचिराम आर्योपदेशक

नवम्बर, सन् १९३८ देहली

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

कराची से लेकर मक्का, मदीना, हजाज़ के वृत्तान्त—

लाहौर से प्रस्थान

रात्रि के दस बजे का समय था। आकाश में बादल छा रहे थे और कुछ–कुछ बूदें भी पड़ रही थीं। मुझे कुछ आवश्यक कार्य था, इसलिए वर्षा का विचार न करते हुए भी अपने मकान से निकल कर दयानन्दोपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन में अपने पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। पूज्य आचार्य जी ने कहा—कि दु:ख बीमारी से न मरकर किसी कार्य को करके मरना चाहिए। अरब में वैदिक–धर्म–प्रचार करने को कहा और पूछा, "क्या अरब में जा कर यह पता लगा सकते हो कि हम किस प्रकार वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं ?, परन्तु सभा से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी।" सहसा श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा सुनकर मैं हैरान रह गया कि किस प्रकार अरब–जैसे देश में पैदल चलकर बिना किसी सहायता के प्रचार कर सकूँगा, परन्तु यह मेरे आचार्य–देव की आज्ञा थी, इसलिए मैंने आज्ञा पालन करने के लिए चरणों में सिर झुका दिया। गुरुदेव ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"परमात्मा पर विश्वास रखो और कल ही चले जाओ। प्रत्येक बन्दरगाह् से मुझे पत्र लिखते रहना।" मैंने उसी समय तैयारी आरम्भ कर दी।

प्रात: संध्योपासना आदि से निवृत्त होकर २९ अप्रैल, सन् १९२९ ईस्वी को लाहौर से कोइटा की ओर चल पड़ा, परन्तु वहाँ से अरब जाने में सफलता न प्राप्त हुई, इसलिए कराची आ गया और यहाँ लंबी यात्रा की तैयारी में कुछ समय के लिए डेरा जमा दिया। यहाँ मैं मोहल्ला खड्डा में ठहरा। कभी–कभी हाजी कैम्प में हो आता था। कई कारणों से मैंने यह उचित समझा कि दाढ़ी रख लूँ, इसलिए दाढ़ी रखनी आरम्भ कर दी।

एक दिन मोहल्ला खड्डा में ईरान से एक दर्वेश (साधु) थल मार्ग से पैदल आया—उससे ज्ञात हुआ कि मक्का तक पैदल चलने का भी

मार्ग है। यह दर्वेश (साधु) शिया सम्प्रदाय का था। उसने मुझे शिया समझते हुए पूछा, कि तुम शिया हो या सुन्नी? मैंने हँस के उत्तर दिया—**''न शिया, न सुन्नी-दबड़ घुसन्नी।''** यह सुनकर वह भी हंस पड़ा और इसके पश्चात् बहुत देर तक हमारी बातें हुई। वह भूखा था, मैंने उसे खाना खिलाया। मेरे पास भी अब पैसा न था, उसने कहा कि रुपया मिल सकता है, यदि मैं कुछ सहायता करूँ। उसने मुझसे शहर चलने के लिए कहा। हम दोनों ने वहाँ से चलकर एक मालदार मुसलमान के घर के सामने डेरा डाल दिया। यह शाम का समय था। जब आधी रात हुई और संसार सो रहा था, उस समय तसबीह हाथ में लेकर फकीर साहब ने रोना-चिल्लाना आरम्भ किया। जब बहुत शोर मचा तो मोहल्ले के लोग जाग पड़े। पहरे वाले सिपाही भी आ गये। लोगों के पूछने पर वह कुछ उत्तर न देता था, वरन् और अधिक कोलाहल करता था। मुझे उसने पहले से ही सिखा दिया था कि साढ़े बाईस रुपये माँगना। मैंने दर्वेश साहब का आदेश लोगों को सुना दिया। वह चिल्लाता था **''ऐ लोगो! तुम मर जाओगे। तुम्हारी औरतें मर जायेंगी। तुम कब्र में जाओगे। मैं गुलशन की सैर करूँगा।''** इतने में सामने वाले मकान से निकल कर एक औरत ने साढ़े बाईस रुपये फकीर को दिये। वह रुपये लेकर बड़ी दुआएँ देने लगा। फिर उसी समय उसने सबके सामने मुझे सवा ग्यारह रुपये गिन दिये और वहाँ से बोरिया बिस्तर उठा कर एक दूर गली में डेरा जमा दिया। वहाँ भी उसने उसी प्रकार कोलाहल मचाना आरम्भ किया—**''साढ़े बाईस रुपये दो और एक लड़का लो।''** लोगों ने उसे पागल समझा और कुछ भी न भेंट किया। आखिर इस प्रकार रात्रि व्यतीत हो गई और दिन निकल आया। प्रातः हम चाय के होटल में गये और चाय पी और दर्वेश साहब ने मुझे अरब जाने के लिए पैदल का रास्ता लिखा लिया।

मेरे पास अब पैसे भी हो गये थे और मार्ग का ज्ञान भी, इसलिए मैंने अब अरब चलने की तैयारी कर दी। वह चरस पीने में लगा और मैंने उससे विदा माँगी। मार्ग में एक दुकानदार से एक लिफाफा मोल लेकर स्वामी जी महाराज को पत्र लिखा कि आज २९ अगस्त, १९२९ ईस्वी को कराची से अरब को चल पड़ा हूँ।

कराची से मघापीर को लारियाँ जाती हैं। मैं चार आने देकर लारी में बैठा और मघापीर जा पहुँचा। यहाँ पर एक गरम पानी का स्रोत है।

यह इतना गर्म है कि इसमें हर एक मनुष्य एक दम नहीं घुस सकता। पास में एक ठंडे जल का स्रोत भी है। लोग दोनों स्रोतों के जलों को मिला कर तब स्नान करते हैं। कराची से हिन्दू-मुसलमान पर्याप्त सँख्या में यहाँ स्नान के लिए आते हैं। मैंने यहाँ स्नान किया और ईश्वरोपासना करने के उपरान्त मनुष्यों के उस जमघट की ओर देखा, जो वहाँ एकत्रित थे और खुशियाँ मना रहे थे, परन्तु मेरे मन की विचित्र अवस्था थी। भारत माता की गोद छोड़ने का विचार, प्रिय मित्रों और सम्बधियों की आकृतियां मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी, परन्तु सबसे ऊपर था, पूज्य आचार्य की आज्ञा पालन का व्रत, जिसे मैंने पूर्ण करने का निश्चय कर लिया था।

मैं यहाँ से आगे चल दिया और कराची को नमस्कार की। छः घंटे चलने के पश्चात् मैं हब नदी के तट पर आया। यह नदी गहरी नहीं है। इस पर से ऊंट, बैल और मनुष्य बिना नाव के पार हो जाते हैं। मैं भी नदी लाँघ गया। नदी पार एक छोटा सा गाँव और थाना है, जो हब नदी के नाम से विख्यात है। यहाँ पर थानेदार साहब ने पासपोर्ट के लिए पूछा। पासपोर्ट होता तो देता। मुझे वापिस कराची जाने की आज्ञा हुई। बड़ी कठिनता से दोपहर की कड़ी धूप में यहाँ तक पहुँचा था, लौटना इससे भी कठिन दिखाई दिया, इसलिए मैंने थानेदार साहब से कहा कि शाम होने दीजिये, मैं वापस कराची चला जाऊँगा। उन्होंने मुझे सावधान करते हुए कहा कि तुम कराची से पासपोर्ट लेकर ही आना और इसके बाद इस चौकी पर पंद्रह दिन तक ठहरना। कारण यह था कि सिंध में बीमारी फैली हुई थी, इसीलिए सीमा पार करने वालों को डाक्टरी परीक्षा के लिए १५ दिन तक कराँटीन के लिए ठहरना पड़ता था। थानेदार साहब ने यह भी बतलाया कि इस चौकी से छिप कर भागने का दुस्साहस न करना, क्योंकि यदि यहाँ से भाग कर दूसरे थाने पर पकड़े गये तो गोली से उड़ा दिये जाओगे। यहाँ से उरमारा तक १७ चौकियाँ हैं। इस पहली चौकी पर बिना पासपोर्ट वाले को लौटा दिया जाता हैं। दूसरे थाने में पकड़े जाने पर गोली मार दी जाती है, क्योंकि उस पर किसी अन्य राष्ट्र का जासूस होने का संदेह किया जाता है।

मैंने यह सब सुना और अरब जाने की तैयारी आरम्भ कर दी। हब वहाँ पर मैंने एक दुकानदार से कुछ कपड़ा मोल लिया, जिससे एक कुर्ती

सफरी थैला बनाया। उसमें एक सिल्वर की देगची और कुछ चावल, आटा, चाय, चीनी, नमक, मिर्च, दियासलाई और एक शीशी घी लिया। कुछ बिस्कुट भी लिये और खाना पकाने का सब सामान थैले में रख दिया। हाथ में एक लाठी और केटली (चायदान) ले ली। पानी एक कपड़े की मश्क में उठा लिया, क्योंकि इसमें पानी ठंडा रहता है।

सूर्य छिपने को था कि थानेदार साहब ने मुझे कराची वापिस जाने को कहा। मैं वहाँ से वापिस चला। जब अन्धकार छा गया तो मैं हब नदी के किनारे पहुँच गया और नदी का किनारा पकड़ कर गाँव और शहर को छोड़ कर दो मील उत्तर को चला गया। एक स्थान पर मैंने देखा कि कुत्ते भूँस रहे हैं और थोड़े-थोड़े प्रकाश में एक गांव भी दिखाई दिया।

रात अन्धेरी थी। आकाश में नीले-नीले मेघ छाये हुए थे। कोई विशेष सड़क न थी। जँगल में कई प्रकार की झाड़ियाँ थी। इससे पहले मैंने डी०ए०वी० हाई स्कूल में मैट्रिक पास किया था और दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में वैदिक धर्म की शिक्षा पाई थी। लाहौर में लगातार कई वर्ष निवास करने से मैं जुराब, बूट, सूट, पहनने का व्यसनी हो गया था। लाहौर की साफ और प्रकाशयुक्त सड़कों पर चलने वाले को इस अन्धेरे में डर लगने लगा और, जो ठोकरें लगी वह मुनाफे में, परन्तु मैंने धैर्य को न छोड़ा और पूर्ववत् चलता रहा। चलते-चलते अर्ध रात्रि के समय मुझे वह काफलों वाली सड़क, जो कि हब नदी गाँव से सोन मियानी की ओर जाती थी, मिल गई। सड़क पा जाने से मैं इतना प्रसन्न हुआ कि चलते हुए गाने लगा।

अभी आध घँटा ही चला था कि दो सिपाही मिल गये। ये शायद मेरे गाने की आहट पाकर नींद से जग गये थे। उन्होंने मुझसे पासपोर्ट माँगा। मेरे पास पासपोर्ट कहाँ था? हाँ, थेले में किसी मोटर कम्पनी का इश्तिहार निकल आया। इस इश्तिहार में एक तसवीर भी बनी थी, जिसमें एक मनुष्य मोटर के पहिए में हवा भर रहा था। मुझे और कुछ न सूझा तो वही इश्तिहार सिपाहियों के हाथ में दे दिया। बेचारे अपनढ़ तो थे ही, उन्होंने दिया सलाई जला कर देखा भी, परन्तु पहचान न सके, बोले तुम्हारा पासपोर्ट तो ठीक है, परन्तु तुमने १५ दिन करँटीन नहीं की, इसलिए हब नदी को लौट जाओ। मैं वापिस लौट पड़ा अभी

दो–चार ही पग चला था कि लौट कर देखा, वे सो गये थे। फिर क्या था मैंने सड़क छोड़ दी और दो फर्लांग की दूरी पर चक्कर काट कर अपनी पुरानी दिशा में चलने लगा। मैं कांटेदार झाड़ियों में से गुजर रथा था कि अंधेरा होने से ठोकर लगी और एक छोटे से गड्ढे में गिर पड़ा। गिरते ही मेरी चायदानी का शब्द हुआ और वे सिपाही चौंक गए, उन्होंने आपस में कहा कि जल्दी गोली चला दो। दुश्मन छिप कर भागा जा रहा है। मैंने उनकी आवाज सुन ली और वहीं गड्ढे में ही पड़ा रहा। उन्होंने वहीं से बैठे हुए अंधेरे में ही गोलियाँ चलानी शुरू कर दी। गोलियाँ मेरे ऊपर से होकर सामने के पेड़ों में लग रही थी। ये लोग जिधर से आहट पाते हैं, वहीं गोली मारते हैं। जहाँ मेरी चायदानी गिरी थी उसके छः इंच ऊपर से गोली जा रही थी। मैं गड्ढे में होने के कारण बाल–बाल बच गया। थोड़ी देर बाद गोलियाँ चलनी बन्द हो गई और वे आपस में कहने लगे कि वह आदमी न होगा कोई शेर होगा। मैंने भी मन में कहा कि अवश्य शेर है। पन्द्रह मिनट तक तो वे वहीं बातें करते रहे, फिर सो गये। मैं वहाँ से धीरे–धीरे सरकता हुआ फिर उसी सड़क पर पहुंच गया। यह सड़क पक्की तो नहीं है, परन्तु आने जाने का मार्ग अवश्य है।

सड़क पर चलते–चलते प्रातःकाल का तारा निकल आया। इससे मैंने अनुमान किया कि सूर्य निकलने में अभी कोई आध घंटा शेष है। दिन निकलते ही मुझे एक काफला मिला, जो कि सोन मियानी की ओर से हब नदी को आ रहा था। मेरा भारतीय पहनावा देखते ही सब मुझसे यही कहते थे कि अब तुम दूसरे थाने में पहुँचते ही मार दिये जाओगे। काफला चला गया। मैंने शीघ्रता से कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग जला ली और उस पर चायदानी रख दी। थोड़ी ही देर में पानी खोलने लगा और मैंने उसमें चाय छोड़ दी। चाय तैयार हो गई। इतने में एक बूढ़ा बल्लौच, जो काफले के पीछे–पीछे आ रहा था आग के पास आकर बैठ गया और अपनी चिलम भर कर पीने लगा। मैंने थैले से कुछ बिस्कुट निकाले और एक चाय का प्याला भर कर उसको दिया। इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ। अब उसने अरमारा तक, जो सत्तरह थाने मार्ग में पड़ते थे, उनसे बचने का उपाय बतलाया। उसने अपने कपड़े मुझे पहना दिये और मेरे कपड़े स्वयं ओढ़ लिये। अब मेरी दाढ़ी अच्छी भली लम्बी हो चुकी थी। सिर पर एक पुरानी तुर्की

टोपी उसके ऊपर एक गज लम्बा मलमल का टुकड़ा बन्धा हुआ था। टोपी के नीचे एक तिकौनी रूमाल और कोट का स्थान शेरवानी ने ले लिया था। धोती उतर कर पायजामा बन गई थी। पाँवों में चप्पल थी। इसी भेष में मैं दूसरे ही दिन चल पड़ा और कई एक थाने छोड़ता हुआ तीसरे दिन **सोन मियानी** जा पहुँचा।

इन दिनों वर्षा हो जाने से मार्ग में पानी हर स्थान पर मिल जाता था। मैं अपना खाना स्वयं ही बना लेता था और वहीं पानी छान कर पी जाता था। जब रात्रि जंगल में ही आ जाती थी तो सूर्य छिपने से प्रथम ही अपना डेरा जमा लेता था और कुछ लकड़ियाँ भी एकत्रित कर लेता था, जिन्हें रात्रि में जलाता था, क्योंकि अग्नि के समीप कोई जँगली जीव नहीं आता। चावल उबाल कर खाता और चाय पीकर सो जाता था। जितना सामान साथ लाया था वह अब समाप्त हो गया था। **सोन मियानी** के पास बकरी चराने वालों से और सामान मंगवाया। यहाँ एक थाना भी है, जिससे दो मील दूरी पर चक्कर काट कर मैं बच कर निकल गया।

सोन मियानी से एक ही दिन चला था कि मार्ग खो बैठा। रात को कुत्ते भौंकने का शब्द सुना तो जान गया बस्ती समीप है, वहाँ पहुँचा। बल्लोची लोग, जो कि बकरियाँ चराते हैं, वहीं पहाड़ की खोह में थे। मुझे आता देख कर खड़े हो गये। कुत्ता भी उन्होंने पकड़ लिया और मुझे कँदरा में ले गये। मुझे बकरियों का दूध पिलाया। उनकी स्त्रियों ने झट चक्की पीसना आरम्भ कर दी और वेग से ज्वार का दलिया पीस कर पका लिया। बल्लौची लोग बाजरा या ज्वार का दलिया अधिक खाते हैं और उनकी रोटी भी इन्हीं अनाजों की होती हैं। मैं **सोन मियानी** से तीन दिन तक कई एक थानों से बचता हुआ लियारी पहुंच गया। मार्ग में कोई काम की सड़क बनी हुई नहीं हैं। मैदान अधिकतर पहाड़ी हैं और पेड़ अत्यधिक हैं। बनैले पशु पहाड़ी कंदराओं में छिपे रहते हैं। **लियारी** में एक थाना है वहाँ से भी बच कर निकल गया और समुद्र के तट पर एक मछवाहे से अपनी सामग्री मंगवा ली। वहाँ से चल कर कई थानों में से बचता हुआ आठ दिन के पश्चात् **अरमारा** के समीप पहुंच गया। केवल पाँच मील का मार्ग शेष रहा था कि मैं मार्ग छोड़ कर खाना बनाने लगा। इतने में एक सिपाही, जो ऊंट पर सवार होकर दौरा करने आया था, मुझे देखकर

मेरे पास आ गया और दूर से चिल्लाया कि पासपोर्ट दिखाओ। मैंने उसे झट वह इश्तिहार दिखाया और उसने कहा कि ठीक है। यह पासपोर्ट मोटर के रास्ते का है क्योंकि आज कल मोटरें भी कभी-कभी यहाँ चलती हैं, परन्तु तुमने **करंटीन** नहीं काटा, इसलिए मेरे साथ **लियारी** चलो। एक-दो फरलाँग तो मैं उसके साथ-साथ चला, परन्तु मैंने उससे कहा कि मैं थका हुआ हूँ, चल नहीं सकता, इसलिए अपने ऊँट पर बिठालो। वह न माना। मैं वहीं पृथ्वी पर बैठ गया और चलने से ना कर दी। उसने बहुतेरा शोर मचाया, परन्तु मैंने कहा मुझे नींद आ रही है, कल ले चलना। जब उसने बहुत ही आग्रह किया तो मैंने उसके हाथ पर चार आने रख कर कहा कि इनसे चाय पी लेना। उसने कहा कि पैसे थोड़े हैं। मैंने उसे चार आने और दिये, जिससे वह प्रसन्न हो गया। उसने कहा कि देखो **अरमारा** यहाँ से पाँच मील दूरी पर है। तुम इसी समय चल दो। मार्ग में एक नाला पड़ेगा, जो कि एक मील चौड़ा है। उसका पानी दो-तीन फुट से अधिक गहरा कहीं भी नहीं है, परन्तु आधी रात को जब समुद्र का पानी चढ़ता है तो उसकी भी गहराई बढ़ जाती है, इसलिए तुम आधी रात होने से पहले ही उसे पार करके **अरमारा** पहुंच जाओ। मैंने ऐसा ही किया और रात में पानी पार करके **अरमारा** पहुंच गया। यहाँ अंगरेजों की राज-सीमा समाप्त होती हैं। मैं हब नदी से **अरमारा** तक १४ दिन में सब थाने पार कर गया। **अरमारा** से आगे में रात में चलता रहा। आधी रात के बाद मैं जब थक कर चूर हो गया तो एक टमाटर के खेत में पड़कर सो गया। सवेरे जब सोकर उठा तो मेरे सिरहाने के नीचे से सारा असबाब (सामान) किसी ने निकाल लिया था। मैं पाँवों का खोज निकाल कर एक झोंपड़ी में जा पहुंचा। वहाँ मेरा सामान भी पड़ा था और एक स्त्री उसके पास बैठी हुई थी। मैंने अपना असबाब उठा लिया। वह स्त्री मुझसे लड़ने लगी कि तुमने हमारे टमाटर खाये हैं। आने-जाने वाले मुसाफिर जमा हो गये और उन्होंने बड़ी कठिनता से मेरा सामान वापिस दिलवाया, परन्तु जब मैं चलने को हुआ तो वह स्त्री मुझ पर कृपालु हो गई और मुझे ज्वार का आटा दिया। मैंने वहीं बैठकर रोटी बनाई और उसके दिये हुए टमाटरों के साथ खाई।

वहाँ से चलकर मैं एक दिन में **पसनी बन्दरगाह** में पहुँच गया और जाते ही दाढ़ी मुँडवा दी और हिन्दू वेश धारण कर लिया! यह

खलीज फारस पर बसरा जाते हुए पहली बन्दरगाह है। यहाँ तक सब बल्लोचों की बस्ती है। यहाँ पर कुछ दुकानें हिन्दुओं की भी हैं। यह हिन्दू सज्जन सिन्धी और गुजराती हैं, जो कि दो हजार वर्ष से यहाँ पर बसे हुए हैं। मैंने वहाँ प्रचार किया और वैदिक-धर्म का पुस्तकालय स्थापित किया। आर्यसमाज भी स्थापित हुई, परन्तु वहाँ पर एक स्थाई पँडित की आवश्यकता थी, जो कि उनको संध्या-हवन सिखाता रहता, परन्तु भारत वर्ष से वहाँ कोई पंडित न पहुँच सका। मैं यहाँ चार दिन तक ठहरा। वहाँ से चलकर गवादर पहुंच गया। **पसनी** से **गवादर** तीन दिन का मार्ग है। यह फारस की खाड़ी पर दूसरी बन्दरगाह है। यहाँ पर भी गुजराती हिन्दू हैं, जो कि दो हजार वर्ष पहले के बसे हुए हैं। हिन्दी भाषा शुद्ध नहीं बोल सकते, परन्तु गुजराती, सिन्धी और अरबी में खूब बोलते हैं। इनके रीति-रिवाजों में भारत के हिंदुओं से कोई भिन्नता नहीं आई। यहाँ पर भी मैंने वैदिक धर्म का प्रचार किया। वैदिक लायब्रेरी और आर्यसमाज स्थापित की, परन्तु यहाँ भी किसी पंडित का प्रबँध न हो सका, जो कि इन विदेशी भाइयों को संध्या-हवन् आदि की शिक्षा देता।

यहाँ से आगे चला तो देखा कि मार्ग अच्छा न था। कहीं पहाड़ी तो कहीं बालू है। ठीक मार्ग न होने से कई बार मार्ग भूल जाता था। मार्ग में मैंने देखा कि यहाँ के मुसलमान आर्य शब्द या आर्यसमाज के अर्थ न समझ सकते थे। उनको आर्य शब्द का अर्थ समझाने में बहुत समय लग जाता था। मैंने सोचा कि कोई ऐसा शब्द अरबी भाषा में से लिया जावे, जिससे यहाँ के मुसलमान स्वयंमेव ही आर्यसमाज के अर्थ समझ जाएँ। मैं उसी विचार में ही **गवादर** से नाव में बैठ कर तीन दिन में मसकत पहुँच गया और बारह दिन तक वहाँ ठहरा। यहाँ से बड़ी-बड़ी नावें बहुत सी बन्दरगाहों को चलती हैं, जिनमें हजारों मन अनाज और बहुत सी सवारियाँ भी होती हैं। यह नावें हवा की शक्ति से चलती हैं। नावों में बड़े-बड़े परदे लगा दिए जाते हैं और यदि वायु का वेग अधिक हो तो चलने में जहाज को पीछे छोड़ देती हैं।

यह नावें एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह तक खूब चलती हैं। माल के अतिरिक्त इनमें सवारियों के बैठने व सोने के लिए पर्याप्त स्थान होता है। केवल एक कष्ट होता है कि जब-जब वायु की दिशा बदलती है तो परदों की दिशा भी बदलनी पड़ती है, जिससे मल्लाह

लोग सवारियों के ऊपर से भागते रहते हैं। पीने का बहुत सा पानी नाव के अन्दर भरा रहता है और खाना पकाने का स्थान भी होता है। सब मुसाफिरों का खाना वहीं बनता है। जिन लोगों को नाव में चढ़ने का पहले से अभ्यास न हो, उनको तीन दिन तक कै (उलटी) आती रहती है, परन्तु तीन दिन के बाद खूब भूख लगती है। सिर में चक्कर आते हैं।

मसकत एक बड़ी बन्दरगाह है, जो कि खाड़ी फारस के तट पर बसीं हुई है। यह अरब की पहली बन्दरगाह समझी जाती है। यहाँ से अरबी इलाका आरम्भ हो जाता है। यहाँ राज्य '**सुलतान तैमूर बिन फैसल बिन तुर्की**' का है । यहाँ हर पन्द्रहवें दिन **भारत** और **बसरा** से जहाज आते रहते हैं। यहाँ पर अस्पताल सुल्तान की ओर से जनता की सेवा के लिए खुला हुआ है। एक अस्पताल अमरीकन मिशन वालों का **मतरह** में है, जो कि **मसकत** के साथ तीन मील दूरी पर है। मसकत में एक अंग्रेज पादरी भी रहता है और गिरजाघर भी है। पादरी साहब ने एक अंग्रेजी स्कूल भी खोल रखा है, जिसमें वहाँ के हिन्दू और मुसलमान लड़के अंग्रेजी सीखते हैं। मिशन की ओर से एक पुस्तकों की दुकान भी है। यहाँ पर भी गुजराती हिन्दू रहते हैं। वहाँ इनका शिवाला भी है और गोशाला भी। ये सब लोग व्यवसायी हैं। खोजा मुसलमान और आगाखानी मुसलमान भी हैं। मसकत के अरबी लोग प्रातः खजूर का ब्यालू (नाश्ता) करते हैं। फिर कहवा पीते है और दोपहर को पेट भर कर खजूर खाते हैं। रात को चावल-मछली खाते हैं, क्योंकि समुद्र में प्रायः लोग मछली पकड़ लेते हैं। मसकत के बाजार बड़े-बड़े हैं। बाजारों में हर प्रकार का सामान मिल सकता है। वहाँ हिन्दू भाई तिजारत का काम करते हैं और राज्य कार्य में भी भाग लेते हैं। आगाखनियों ने वहाँ एक मिशन बनाया हुआ है। वहाँ इनका वार्षिक उत्सव हर वर्ष होता है। आगाखानी वहाँ हारमोनियम बजा कर भजन गाते हैं। मैं जब वहाँ पहुँचा तो उन दिनों आगाखानियों का वार्षिकोत्सव था। मुझे वहाँ बुलाया गया और व्याख्यान देने की आज्ञा भी मिल गई। मैंने केवल ईश्वर को मानने पर व्याख्यान दिया, वह मेरे साथ सहमत हो गये। मेरे सिद्धान्तों की प्रशंसा की। मैंने सोचते-सोचते इसके लिए एक शब्द "**हिज बुल्लाह**" अर्थात् केवल एक ईश्वर को मानने वाली पार्टी या अच्छे आदमियों की पार्टी नाम

रखा और मैंने एक स्कीम बनाई कि संसार को हम दो ही भागों में बाँट सकते हैं; जैसे—दिन और रात, भलाई और बुराई अच्छे और बुरे आदमी इत्यादि, जो अच्छे कार्य हैं उनका नाम "**हिज बुल्लाह**" रखा और, जो बुरे मनुष्य हैं उनका नाम "**हिज बुश् शैतान**" रखा। मैं लोगों से पूछता था कि तुम अच्छे मनुष्य हो अथवा बुरे। कौन आदमी अपने को बुरा कहना पसंद करेगा ?, इसलिए हर मनुष्य यही उत्तर देता कि हम अच्छे मनुष्य है। बस मैं उनको "**हिज बुल्लाह**" अर्थात् आर्यसमाज के सिद्धान्त बताता था ? जब लोग मुझसे पूछते कि तुम्हारा धर्म क्या है। तो मैं उत्तर देता "**हिज बुल्लाह**" बहुत से यह प्रश्न करते कि क्या तुम मुसलमान हो ? तो मैं उत्तर देता कि मैं मुसलमान नहीं हूं। मेरा धर्म आर्य है। ऐसे ही आर्यसमाज का नाम अरबी में "**हिज बुल्लाह**" रखा।

यहाँ मसकत में और मसकत के आस-पास अमान में तीस-चालीस के लगभग अरबों की बस्ती है, जो कि **खारिजी फिर्का** के नाम से प्रसिद्ध हैं, अर्थात् इस्लाम से खारिज किये (निकाले) हुए! खारिजी लोगों के बारह इमाम हैं। वह कहते हैं कि हमारे इमामों के मकबरों (समाधियों) से नूर (प्रकाश) निकलता है, इसलिए उनका सुन्नी मुसलमानों से मतभेद है।

मसकत वाले मुसलमानों का पहनावा यह है। एक लम्बा कमीज, सिर पर एक त्रिकोण रूमाल और उसके ऊपर तीन रस्सियाँ। कोट की तरह का एक लम्बा कपड़ा पहनते हैं, मैंने भी यह पहनावा पहना।

स्त्रियाँ बुरके के स्थान पर मुँह के ऊपर एक काला रूमाल डाल लेती हैं। आँखें साफ तौर पर बाहर दिखाई देती रहती हैं। विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ विवाह वाले घर जाते हैं, सब एक ही शब्द के साथ जिह्वा को मुंह के भीतर हिलाती हुई बकरे की भाँति शब्द निकालती हैं। इसी प्रकार सारे अरब में विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ करती हैं।

पसनी, गवादर, मसकत में हिंदू आर्य भाई मेरी महमानी करते रहे। न्योते पर न्योता आने लगा। मार्ग में प्रायः अपना खाना मैं स्वयं हीं बना लिया करता और एक मश्क पानी को भर कर साथ ले लेता था। जहाँ जँगल में दोपहर या रात्रि हो जाती वहाँ चावल लेता था और चाय पीता था। खजूर भी बहुत खाता था, परन्तु रोज-रोज खाना और सामान लाद कर पैदल चलने से थकावट बहुत हो जाती थी। यदि

सामान न उठाता तो मार्ग में भूखा प्यासा रहना पड़ता। एक–दो दिन की यात्रा इस प्रकार हो सकती है, परन्तु जहाँ वर्षों की अपरिमित यात्रा का प्रश्न हो, वहाँ बिना पर्याप्त प्रबन्ध किये हुए स्वास्थ्य ठीक न रह सकता था।

वहाँ का, जो बादशाह है वह भी **खारिजी फिर्का** से है। मैं सुलतान मसकत से मिला था और उसे **''हिज बुल्लाह''** के नियम बताये थे, जो कि सुलतान को अतीव भाए थे। उसने मुझे सौ रयाल **''हिज बुल्लाह''** के प्रचार के लिए दिये। उस समय एक रयाल एक रुपया छह आना का था। मैंने ''हिज बुल्लाह'' के सिद्धान्त और कुछ कार्ड अरबी में छपवा लिये थे और इनसे प्रचार करता रहा। यहाँ मैंने वैदिक पुस्तकालय और जमीयत **''हिज बुल्लाह''** स्थापित किया।

यहाँ मुझे यह देखकर क्षोभ हुआ कि यहाँ के बादशाह और धनवान लोगों ने गुलाम (दास) रखे हुए हैं, जो कि अफ्रीका के हवशी होते हैं। यहाँ गुलाम मनुष्य और स्त्रियाँ भेड़–बकरियों की भाँति बिकते हैं। इस्लामी शरीअत की पुस्तकों **''कदूरी कनज''** में बाबुल अब्द में लिखा है कि गुलाम रखना जाइज है। यही नहीं बल्कि गुलाम स्त्रियाँ बिना निकाह (विवाह) के मालिक की स्त्रियाँ हैं। यदि किसी मुसलमान की इस्लामी शरीअत के अनुसार चार विवाहिता हों और साथ ही कई गुलाम स्त्रियाँ हों तो बिना निकाह (विवाह) के उनको अपनी स्त्रियाँ बना सकता है।

देखिये कितना घोर अन्याय है कि एक गुलाम मनुष्य अपने स्वामी के पास रात–दिन काम करता हैं और उसको यह पारितोषक मिलता है कि उसके सामने उसका स्वामी उसकी स्त्री के पास जा सकता हैं। यह है इस्लाम की मुसावात—मनुष्यों को बेचना और गुलाम औरतों के साथ खराबी करना। फिर भी मुसावात की रट लगाए जाते हैं। यदि यहाँ आर्य राज्य होता तो वहाँ के गुलाम स्वतन्त्र कर दिये जाते।

आह! मुसलमान भाई यह अन्याय करना छोड़ दें तो कितना अच्छा हो। वर्तमान दशा में मुसलमान भाई शरीअत की पुस्तकों में से बाबुलअबद ही उड़ा दें तो भी गुलाम स्वतंत्र हो सकते हैं, अन्यथा नहीं! मुझसे यह अन्याय देखकर न रह गया कि मनुष्य और स्त्रियाँ भेड़ों की भाँति बेचे जाएं। मैंने उनको स्वतन्त्र कराने के लिए कई

प्रयत्न किये, परन्तु सफलता न मिली। इतना कर सका कि सब गुलाम लोग मेरे "**हिज बुल्लाह**" धर्म की ओर झुक गये।

दुबई को प्रस्थान और बद्दुओं के वृतान्त

वहाँ से ख़लीज फारिस के किनारे चल कर दबई का मार्ग पकड़ा। मार्ग में जंगल ही जंगल आता है और जंगल में बद्दू लोग रहते हैं। ये लोग ऊंट और बकरियाँ चरा कर पेट पालते हैं। वे जिधर वर्षा हुई हो उधर ही चले जाते हैं, क्योंकि ऐसे स्थान में घास उग आती है, जिस पर उनकी बकरियाँ चरती हैं। रात्रि को पेट भर कर दूध पी लेते हैं। अनाज तो नाम मात्र का खाते हैं। इनका वास्तविक भोजन तो खजूर है। सवेरे ब्यालू (नाश्ता) करते हैं, खजूर खाते हैं और इसके उपरान्त कहवा पीते हैं। फिर मध्याह्न में पेट भर कर खजूर खाते हैं।

जहाँ-जहाँ बद्दू और अरबी लोग स्वतंत्र हैं वहाँ ये अपने पास शस्त्र रखते हैं। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति बिना लाइसैंस के हर प्रकार का शस्त्र रख सकता है। एक कटार और कारतूस की पेटी कमर में बंधी रहती है और बन्दूक तो हाथ से शायद ही कभी छुटती हो। मैंने भी वहाँ सभी शस्त्र अपने पास रख लिये थे। अरब में जहाँ-जहाँ राज्य की सत्ता कम है। वहाँ बद्दू लोग यात्रियों को लूट लेते हैं। इस बात का विचार नहीं किया जाता कि लुटने वाला कौन है। चाहे वह सैय्यद हो अथवा पीर, मुसलमानी का कितना ही बड़ा दावा करता हो, कपड़े तक उतरवा लेते हैं। भारतीय मुसलमान या किसी अन्य देश का मुसलमान जाता हो, उसे दूर से ही अरबी में कह देते हैं कि तुम्हारे पास जितना सामान है रख दो।, जो रख देता है उसकी तलाशी लेकर छोड़ देते हैं, जो उनकी ललकार पर ध्यान नहीं देता उस पर गोली चला देते हैं और कपड़े उतार लेते हैं।

मैं मसकत से केवल दो ही दिन चला था, सायंकाल के समय मुझे कुछ बकरियाँ और ऊंट चरते दिखाई दिये। बहुत से बद्दू लोग, जो लगभग नंगे थे और शरीर पर केवल एक काली सी धोती पहने हुए थे, मुझे देखते ही मेरी ओर दौड़े। दूर से ही अरबी में बोले, ए हाजी! तुम्हारे पास कितने पैसे हैं? इधर रख दो, वरना खुदा की कसम हम तुम्हारा कतल कर देंगे। मैंने अरबी ही में उत्तर दिया मैं हाजी नहीं हूँ, आर्य साधू हूँ, मेरे पास पैसे नहीं हैं। उन्होंने कहा कि हाजी लोगों और साधुओं के पास बहुत पैसे होते हैं। वे धीरे-धीरे मेरे बहुत समीप पहुंच

गये और कहने लगे, सब सामान रख दो, नहीं तो मार देंगे। मैं इनके विषय में पहले ही से जानता था, इसलिए मुझे उनकी बात पर विश्वास था। जीवन और मृत्यु का प्रश्न था, मैंने जान हथेली पर रख ली और अपनी बन्दूक में वेग से कारतूस डाल दिया। उनके पास भी बन्दूकें थीं। मैंने कहा—जान लो अथवा जान दो।

यह सुन कर एक बूढ़ा मनुष्य कहने लगा, शाँति रखो ऐ लड़के! हम तुम्हारे साथ हँसी करते हैं। मैंने कहा—मैं भी तुम्हारे साथ हँसी करता हूं। मैं तो तुम्हारा अतिथि हूं। उन्होंने मेरे साथ हाथ मिलाते हुए कहा—'**स्वागतम्**'। इसके पश्चात् वे सब पृथिवी पर बैठ गये और मैं भी बैठ गया। गोल दायरा बना कर एक ओर बद्दू पुरुष बैठ गये और दूसरी ओर स्त्रियाँ।

सबसे पहले बद्दू पुरुषों ने पूछा—तुम कहाँ से आये हो और कहाँ जाओगे? मैंने कहा भारतवर्ष से आया हूं और मक्का जाऊँगा। फिर बद्दू स्त्रियों की बारी आई। सबसे पहले एक स्त्री ने प्रश्न किया, क्या तुम्हारा विवाह हुआ है? मैं दो मिनट तक सोचता रहा कि क्या उत्तर देना चाहिये। मैंने हंसी में उत्तर दिया कि हाँ, मेरा विवाह हुआ है। उस पर वह स्त्री बोली, उसको तलाक दे दो अर्थात् छोड़ दो । मैंने पूछा, क्यों? उसने हाथ से संकेत करके कहा—वह लड़की अतीव सुन्दर है। हम तुमको वह लड़की दे देंगे। वह तुम्हें चाहती है। इस पर मुझे बड़ी हंसी आई। मैंने कहा—मैं तो वैदिक धर्म का प्रचार कर रहा हूँ। ऐसा होना असम्भव है।

अब बद्दू लोगों की बारी आई। उन्होंने पूछा कि क्या तुम प्यासे हो। मैंने उत्तर दिया कि, हाँ। उन्होंने मेरी चायदानी उठाई और ऊंटनी के दूध से भर लाये। मैंने बहुत सा दूध पिया। इसके उपरांत उन्होंने पूछा कि क्या आपको भूख लगी है? मैंने कहा—हाँ। तो वे मेरे लिए खजूर लाये। मैंने खजूर खाई और बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि जैसा सुनते थे कि ये लोग असभ्य होते हैं, वह बात झूठ निकली। हाँ, मालदार से उसका धन अवश्य छीन लेते हैं, परन्तु मेरे थैले में खाने-पीने की सामग्री के अतिरिक्त था ही क्या? मैंने सोचा, इन लोगों ने मेरी बहुत आवभगत की है, इसलिए इनको क्या भेंट करूँ? इतने में ही बद्दू स्त्रियों ने कहा कि तुम्हारी कमीज के बटन बहुत अच्छे लगते हैं, हमें दे दो। मैंने कमीज के सब बटन तोड़कर उनको दे दिये। वे इससे बहुत

प्रसन्न हुईं। मैंने और कुछ निकालने के लिए हाथ डाला तो थोड़े से बिस्कुट हाथ आये। मैंने यह बिस्कुट भी उनको दे दिये। थैले में एक छोटा गोल शीशा और एक छोटी कैंची भी साथ लाया था। जब जँगल में बाल अधिक बढ़ जाते थे तो इनसे काम ले लेता था। मेरी चूक से वह गोल शीशा भी बिस्कुटों के साथ ही उनके पास चला गया, जब एक स्त्री ने देखा तो वह हंसने लगी और बोली—खुदा की कसम, इसमें लोग हैं। फिर तो छीना-झपटी आरम्भ हो गई। बद्दू लोग इस शीशे में देखते थे और हंसी से लोट-पोट हो रहे थे। कहते थे तुम तो जादूगर हो। कोई कहता था मेरी ऊंटनी के लिए ताबीज़ लिख दो, क्योंकि वह दो दिन से कुछ नहीं खाती। कोई कहता था, हमारी बकरियों के लिए ताबीज़ लिख दो, क्योंकि भेड़िये आते हैं और इनको उठा कर ले जाते हैं। कोई मेरे तावीजों से जिन्न-भूतों को वश में करना चाहता था। इस प्रकार काफी समय तक दिल्लगी हुई। मेरा ताबीजों में विश्वास न था, परन्तु उनके आग्रह पर कागज पैंसिल हाथ में ले लिये और सँस्कृत में गायत्री मंत्र लिखने लगा।

रात को मैं उन्हीं के यहाँ ठहरा। वे लोग मेरे असीम भक्त हो गये। दूसरे दिन जब वहाँ से चलने को प्रस्तुत हुआ तो उन्होंने और ठहरने को कहा, परन्तु मैंने उन्हें समझाया कि मुझे दूर जाना है और मेरे पास समय नहीं है। उन्होंने मुझे सवारी के लिए एक ऊँटनी देनी चाही, परन्तु मैं तो पैदल ही चलना पसन्द करता था, इसलिए ऊँटनी लेने से इन्कार कर दिया। चलते समय उनके सरदार ने एक छोटा सा पत्थर दिया और कहा मार्ग में यदि बद्दू लोग सतायें तो यह पत्थर दिखा देना।

कुछ दिनों तो यह '**पासपोर्ट**' चला। जब उनकी सीमा समाप्त हुई तो दूसरे बद्दूओं के सरदार ने एक छोटी सी लाठी दी। तीसरे इलाके में एक श्वेत रँग का कपड़ा मिला। यह बद्दुओं के पासपोर्ट हैं। अन्त में मैं दुबई पहुँच गया। यह भी एक बड़ी बँदरगाह है। **खालीज फारिस** के किनारे पर है। वहाँ का बादशाह शेख सईद है। मैं उससे मिला और उन्होंने शाही अतिथिगृह में मेरे ठहरने का प्रबंध कर दिया। वहाँ पर हर मुसलमान को शेख कहते हैं, जैसे हमारे यहाँ प्रत्येक हिन्दू को महाशय जी। भारत वर्ष में, जो अभिप्राय "शेख" शब्द से लिया जाता है वैसा अरब में नहीं है। शेख सईद एक अच्छा और विद्वान् व्यक्ति है, जिसकी प्रशंसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। वह प्रत्येक अच्छी

बात को झट ग्रहण कर लेता है, चाहे किसी धर्म की ही क्यों न हो। उसका मैं कृतज्ञ हूं कि उसने मुझे हिज बुल्लाह (आर्य धर्म) के प्रचार की आज्ञा दी और काफी सहायता पहुँचाई।

वहाँ कुछ भारत वर्ष से आये हुए हिन्दू और मुसलमान भी हैं। मैंने वहाँ वैदिक लाइब्रेरी और **जमीयतुल हिज बुल्लाह** (आर्यसमाज) स्थापित की। यहाँ पर भी हिन्दू भाइयों की ओर से मेरी कई दावतें हुईं और आठ दिन तक ठहरा। मैं सारे दुबई के अरबों में नित्यप्रति प्रचार करता था। वे लोग बहुत प्रसन्न होते थे और मुझे सदैव ठहरने के लिए कहते थे।

यहाँ पर ईरानी फारसी लोग, जो कि शिया हैं, काफी सँख्या में बसे हुए हैं और लेन-देन करते हैं। यहाँ के अरबी प्रातःकाल का खाना (ब्यालू) खजूर से करते हैं और फिर कॉफी पीते हैं। दोपहर को पेट भर कर खजूर खाते हैं और दूसरी बार कॉफी पीते हैं। रात्रि में चावल और मछली खाते हैं। यहाँ मछली का शिकार प्रत्येक मनुष्य करता है। जहाज हर पंद्रहवें दिन आता है। अरबी की कई पाठशालायें हैं, परन्तु शोक! शेख साहब और धनी व्यक्तियों ने यहाँ पर भी गुलाम रखे हुए हैं और गुलाम की स्त्रियों से वही बर्ताव करते हैं। मैंने उनको स्वतंत्र कराने के लिए बहुत हाथ-पाँव मारे और यहाँ प्रचार करने के पश्चात् कतर चलने को प्रस्तुत हुआ।

कतर को प्रस्थान

मैं जब नाव में सवार हुआ तो वहाँ के अरब हिन्दू और शेख भाई मुझे किनारे पर छोड़ने के लिए आये। नाव में मेरे खाने की सामग्री रख दी गई। शेख साहब ने बहुत सारे नींबू दिये थे कि यदि नाव में चक्कर आने लगें तो इन्हें खाना। इनसे चक्कर नहीं आते। हिन्दू भाइयों की आरे से कई प्रकार की मिठाइयाँ और खाने-पीने का सामान, जो कि मुझे सात दिन के लिए पर्याप्त था रख दिया गया। मैं वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए नाव में बैठा और नाव चल पड़ी।

वायु अच्छी थी, इसलिए नाव वेग से चली जा रही थी। अगले दो-तीन घंटों में मुझे इतने चक्कर आये कि बेहोश हो गया और उलटी करने लगा। नाव में ही पड़ कर लेट गया। जब जरा सिर उठाता, कै (उलटी) आ जाती, इसलिए मैंने तीन दिन खाना बिल्कुल नहीं खाया। केवल नींबू चूसता रहा, जिससे लाभ होता था।

तीन दिन के पश्चात् भूख लगने लगी। अब बैठने पर चक्कर भी न आते थे। मिठाई की टोकरी, जो मुझे मिली थी, एक ही दिन में खा गया। दूसरे दिन के लिए केवल भुने हुए चने रह गये। इन्हें खाकर कठिनता से दोपहर काटी। भूख खूब लग रही थी। मेरे अरबी साथी नाव में चावल और मछलियाँ पका रहे थे। मछलियाँ तो उनको समुद्र ही में से मिल जाती थी। चलती किश्ती में मछली का शिकार कर लेते थे।

जब वह खाना पका खा चुके तो मैंने उन्हें मछली और माँस न खाने का उपदेश दिया, जिससे वह अति प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझसे चावल लेकर मुझे पका कर दिये, उनके पास खजूर थी, जो उन्होंने मुझे भेंट की, मैंने चावल और खजूर खाये। इसके पश्चात् मैंने उन्हें अपनी चायदानी दी, जिसमें उन्होंने मुझे चाय बना दी, मैंने उन्हें एक-एक प्याला चाय का दिया। वे लोग कॉफी के व्यसनी थे, जिसके बिना वे अब दुःखी थे। मेरी चाय पीकर बहुत प्रसन्न हुए।

मैं अब नाव में बैठा हुआ चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहा था—हर ओर पानी ही पानी था। ऊपर नीले रंग का आकाश बहुत सुंदर प्रतीत होता था। होश में आने के बाद दो दिन तक अरबों को उपदेश सुनाता रहा और इसका उन पर काफी प्रभाव पड़ा। वह अब मेरा सम्मान करने लगे थे।

इस प्रकार पाँचवें दिन मैं कतर पहुंच गया। नाव से पृथ्वी पर पाँव धरते ही ईश्वर का धन्यवाद किया। नाव में शुद्ध वायु मिलते रहने से स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया था। अब मैंने अपने शरीर में पहले से कहीं अधिक स्फूर्ति का अनुभव किया।

कतर का शासक शेख अबदुल्ला बिन कासिम है। वहाँ एक किला भी बना हुआ है, परन्तु वह उसमें नहीं रहता। वहाँ उसका नायब रहता है। वह स्वयं एक-दो मील की दूरी पर एक छोटे से गांव में रहता है और वहीं अपनी कचहरी लगाता है। कतर में कोई विशेष खेती बाड़ी नहीं होती, परन्तु वहाँ के वासी समुद्र में से मोती निकालते हैं। मोती निकालने का कार्य केवल तीन मास होता है।

मैंने यहाँ भी कुछ दिन ठहर कर प्रचार किया और इसका उन लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यहाँ गुलामों पर बहुत अन्याय किया जाता है। बेचारों से रात-दिन काम लिया जाता है, परन्तु उन्हें पेट भर

खाना भी नहीं मिलता। साधारण–सी चूक हो जाने पर कोड़े लगाये जाते हैं। यहाँ से अरब का विशाल सुनसान बियावान जँगल आरम्भ हो जाता है। प्रथम मुझे **अलहसा** (नजद) जाना था, क्योंकि वहाँ से केवल बारह दिन का मार्ग है।

मैंने अपना समान बाँध कर यात्रा करनी आरम्भ की। भाग्यवश तीन अरबी और भी उसी दिशा में जा रहे थे। उनका मेरा साथ हो गया। मार्ग में जँगल बियाबान था और पेड़ आदि का नाम निशान न था। मनुष्य तो अलग, कोई पशु–पक्षी भी नहीं दिखाई देता था। हमारे साथ, जो पानी था, वह दो दिन में ही समाप्त हो गया। तीसरे दिन आगे बढ़े तो प्यास ने बहुत व्याकुल किया। चौथे दिन प्रातःकाल हम वापिस कतर की ओर भागे, क्योंकि मार्ग में पानी मिलने की किंचित् आशा न थी। बालू में कोई पेड़ न होने से धूप बहुत सताती थी। यहाँ से अलहसा केवल आठ दिन का मार्ग था।

जब मध्याह्न का समय आया तो हमारे एक साथी ने पानी माँगा और धैर्य छोड़ दिया। वह जमीन पर लेटते हुए बोला कि पृथ्वी के नीचे से थोड़ी सी गीली मिट्टी निकाल कर मेरी छाती पर रखो। हम अभी मिट्टी खोद ही रहे थे कि उसके हदय की धड़कन ठहर गई और वह मर गया। उसका मरना था कि दोनों साथी धैर्य छोड़ कर भागे। मैंने उन्हें कई आवाजें दी, परन्तु उन्होंने पीछे मुड़ कर भी न देखा।

मैं थोड़ी सी देर और चला कि सायंकाल हो गई। सौभाग्य से थोड़ी सी लकड़ियाँ मिल गई थीं। उन्हीं से रात को अग्नि जलाई, जिससे कोई जंगली पशु समीप न आ सके और आग के पास ही सो गया। सवेरे जब उठा तो एक काफिला **अलहसा** से **कतर** की ओर आ रहा था। वह मुझे मिला और मैं उनके साथ चल पड़ा। उन्होंने मुझे पानी पिलाया।

जब हम वापिस जा रहे थे तो मार्ग से उन दो अरब साथियों में से एक की मृतदेह मिली। मध्यान्ह का समय था और पृथ्वी में से अग्नि निकल रही थी। दूसरे दिन मुझे तीसरे साथी की देह मिली, जो प्यास के मारे मर चुका था। कतर पहुँचते ही मैंने वहाँ की पुलिस को रिपोर्ट की। पुलिस ने अपने कुछ सिपाही ऊँटों पर भेजे, जो उनके शवों को वहीं दफन कर आये। दफन करने से पहले उनकी तलाशी ली गई तो एक की जेब से सोने के आठ पौंड निकले, दूसरे से चार पौंड और

तीसरे के पास से कुछ भी न निकला। उन तीनों को दफन कर दिया गया और वे बारह पौंड राज्य कोष में जमा हो गये।

कतर में एक भारतीय मुसलमान नाई भी था। वह मुझसे उन तीनों के नाम पूछने लगा, क्योंकि उन अरबों को अपना सम्बन्धी बता कर इनके बारह पौंड लेना चाहता था। मैंने उसे बहुत समझाया कि पराये रुपये को मिट्टी के सदृश समझना चाहिये और उसे यह भी समझाया कि यहीं नाई का कार्य करते रहो, जिससे केवल बारह पौंड के अतिरिक्त कई पौंड कमा लोगे। इस पर उसको कुछ शाँति हुई। मैंने दस दिन तक वहाँ ठहर कर समुद्र के किनारे–किनारे चलना आरम्भ किया।

बहरीन टापू को प्रस्थान

कतर से जोवाईन, खोर, जखीरा, फिहरत, गारयत, मफीयर, दमदम से होता हुआ **लखबर** पहुँचा। **जोवाईन** से **लखबर** तक कोई मार्ग नहीं है। मैं खलीज फारिस के किनारे चल रहा था। कतर से लखबर पंद्रह दिन में पहुँच गया। जब मैं यहाँ समुद्र के किनारे पर खड़ा था तो समुद्र के मध्य में एक अतीव आभा पूर्ण नगर दिखाई दिया। यही बहरीन का टापू है। सौभाग्य से एक नाव बहरीन को जा रही थी, जिसमें मकान बनाने के लिए मिट्टी भरी हुई थी। मैं भी भाड़े का एक रयाल देकर उसमें सवार हो गया। मेरे पास पासपोर्ट न था, इसलिए नाव वाले ने कहा कि हम तुम्हें मुहरक बाजार में उतार देंगे।

यह नाव शाम को चली थी। रात में नाव बहरीन पहुँच जाती है, परन्तु हम मार्ग भूल गये और चार दिन चार रात्रियाँ समुद्र में ही फिरते रहे। न कोई जहाज आया, न नाव। नाव वालों ने केवल एक दिन का खाना और पानी उठाया था। अब तीन दिन और तीन रात्रियाँ ऊपर हो गये थे, इसलिए भूख और प्यास से सब व्याकुल थे और उसके ऊपर एक क्लेश और था कि जाड़ों के दिन होने के कारण रात्रि में कड़ाके की ठण्डक पड़ती थी।

मुझे इस समय लाहौर याद आया कि वहाँ कितना आराम था, परन्तु मेरी परीक्षा हो रही थी। परमात्मा ने मुझे पास कर दिया। पाँचवें दिन जब हम हताश हो चुके थे तो बहरीन दिखाई देने लगा। मुहरक बाजार में उतरा और सीधा शेख ईसा, जो कि वहाँ का शासक है,

उसको मिला। मैंने उसे शेख सईयद दुबई का परिचय दिया। उसने मुझे राज्य महल में ही ठहरा लिया।

बहरीन टापू की लम्बाई चालीस मील से अधिक होगी और चौड़ाई बीस मील के लगभग होगी। यहाँ पर प्रायः मोती निकाले जाते हैं। यहाँ पर ईरानी लोग और भारतीय मुसलमान रहते हैं। हिन्दू भी लगभग दो सहस्त्र वर्ष से बसे हुए हैं। यहाँ कार्य व्यवहार बहुत होता है। जहाज हर पन्द्रहवें दिन आता है।

नाव में चार दिन की भूख प्यास ने यात्रा से मेरा मन खट्टा कर दिया था और मैंने नाव में ही यह निश्चय कर लिया था कि बहरीन से उतरते ही प्रचार का कार्य छोड़ कर सदैव के लिए शाँति का जीवन व्यतीत करूँगा, परन्तु श्री पूज्य स्वामी जी की आज्ञा पालन का विचार, आर्यसमाज के जन्मदाता की कठिनाइयाँ और बलिदान, आर्यसमाज का उच्च सन्देश और वेद के प्रचार की लगन कुछ ऐसी बातें थी, जो कि सुख और शाँति की इच्छा पर विजय पा गई और मैं अपने कार्य में पहले से भी अधिक साहस से जुट गया।

वहाँ बाजार में हर समय एक सौ अरब सिपाहियों का पहरा रहता था और रात्रि में आठ बजे के पश्चात् किसी को घर से बाहर निकलने की आज्ञा न थी, परन्तु कितनी प्रसन्नता की बात है कि वहाँ के हिन्दू लोग लालटेन हाथ में लेकर बाहर आ–जा सकते हैं। हर एक चौक पर सिपाही पहरा देता है। दूर से आते हुए प्रत्येक व्यक्ति से पूछा जाता है, तुम कौन हो ? यदि उत्तर मिले कि मैं हिन्दू हूं तो उसे कोई कुछ नहीं कहता। यह है हिन्दू धर्म की उच्चता, जिसे दो सहस्त्र वर्ष से बसे हुए हिन्दुओं ने अरबों के हृदयों पर अंकित कर दी है।

यहाँ पर मैंने ग्यारह दिन तक प्रचार किया। वैदिक लायब्रेरी और आर्यसमाज स्थापित की। यहाँ पर भी गुलाम रखने का बुरा रिवाज है। राज्य की ओर से कई पाठशालाएं हैं जहाँ अरबी आदि की शिक्षा दी जाती है। **बहरीन** के दो बाजार प्रसिद्ध हैं, **मुहरक** बाजार, जिसमें वहाँ का शासक शेख ईसा रहता है और दूसरा **मनाया** बाजार, जो सबसे अधिक मनोरम है तथा जहाँ व्यवसायी लोगों की कोठियाँ हैं। यहाँ व्यापार बहुत होता है। अंग्रेजी जहाज हर पंद्रहवें दिन डाक लाता है।

शेख ईसा ने, हिज बुल्लाह विषय में मेरे पास जितनी पुस्तकें थी सुनी। सुल्तान इबनसऊद, जो नजद रयाज में रहता है, जो कि मक्का

मदीना का बादशाह है, उसका एक सफीर अर्थात् पासपोर्ट देने वाला यहाँ पर रहता हैं। मैंने एक पत्र जलाला तल मलिक अबदुलअजीज इबनसऊद को लिखा, जिसमें मैंने हिज बुल्लाह धर्म के प्रचार की आज्ञा चाही और, जो पुस्तकें अरबी में प्रचार के लिए छापी थीं पत्र के साथ भेज दी। परमात्मा की अपार दया से मुझे वहाँ जाने की आज्ञा मिल गई और साथ ही मार्ग में शाही अतिथिगृह में ठहरने का प्रबन्ध भी कर दिया था, क्योंकि मुझे एक अतिथि के सदृश बुलाया था। अब मैं नाव में सवार होकर लखबर लौट आया।

अलहसा को प्रस्थान

लखबर से चलकर मैं दो दिन **कतीफ** जा पहुँचा। यहाँ से इबनसऊद का भाग आरम्भ हो जाता है। वहाँ पर एक अरब अमीर अर्थात् डिप्टी कमिश्नर रहता है। उन्होंने मुझे शाही अतिथिगृह पर उतारा और खाने-पीने की सब सामग्री दे दी। साधारणतया मैं अरब में अपने हाथ का पका हुआ भोजन खाता था, परन्तु, जो व्यक्ति हिज बुल्लाह के सिद्वान्तों को मान लेता था, उसके हाथ का पका हुआ भोजन मैं खा लेता था, क्योंकि ऐसा करने से '**हिज बुल्लाह**' के सदस्यों को प्रोत्साहन मिलता था।

यहाँ भी अमीरों के पास बहुत से गुलाम थे। मैंने उनको स्वतंत्रता दिलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया। इससे उनकी मेरी ओर सहानुभूति बढ़ी और वे '**हिज बुल्लाह**' के सदस्य बन गये। केवल तीन दिन प्रचार करने के पश्चात् मैं वहाँ से अलहसा को चल दिया और तीन दिन में वहाँ पहुँच गया।

अलहसा में जब तुर्कों का राज्य था। उस समय शेख अबू बकर हनफी थे, जो कि अब भी हैं। वह बड़ा विद्वान् है। उसके तीन बेटे हैं। एक लड़का मक्का में पढ़ता है। यह घर से भाग कर गया था और वापस अलहसा नहीं जाना चाहता था। जब मैं मक्का पहुँचा तो यह लड़का भी मुझे मिला था। आजकल यहाँ पर वहाबी आलिम बहुत हैं, जो कि बहुत अच्छा पढ़ाते हैं। नजद की हकूमत व अलहजाज से इन पाठशालाओं की सहायता की जाती है।

अलहसा में अरबी लोग सवेरे खजूर का ब्यालू करते हैं। दोपहर को सारे शहर में ढूंढ़ने पर भी आप कहीं रोटी पकती हुई नहीं देखेंगे। दोपहर को पेट भरकर खजूर खाते हैं और रात को चावल। प्रतिदिन

खजूर खाने से मेरे तो मसूड़े फूल गये थे। वहाँ किले में एक फौज रहती है उसका खाना भी नजदी हकूमत की ओर से मिलता है। सवेरे सबको खजूर मिलती है और शाम को चावल। अलहसा में खजूर के पेड़ बहुत हैं। खेतों को पानी कुँओं से दिया जाता है। यहाँ का शासक शेख अबदुल्ला बिन जलवी, जो कि बहुत न्यायकारी है, उसने मुझे शाही निवासगृह में उतारा और प्रचार करने की आज्ञा दी। दस दिन तक मैंने प्रचार किया। मेरे प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ा।

पाठकों को यह सुन कर अचम्भा होगा कि यद्यपि मैंने दयानन्द उपदेशक विद्यालय में कुछ अरबी पढ़ी थी, परन्तु भारतवर्ष की पढ़ी हुई अरबी वहाँ कुछ अधिक काम न दे सकी। मैं कराची से पैदल चला था। हर बारह मील चलने पर बोली कुछ-कुछ बदल जाती थी और ज्यों-ज्यों बोली बदलती थी। मैं नये स्थान के नये अक्षर सीख लेता था। ऐसे ही मैंने अरबों और बद्दुओं में प्रचार करते-करते उनकी भाषा सीख ली। सारे अरब में मैं फिरा, परन्तु किताबी अरबी कहीं नहीं बोली जाती। खलीज फारिस के किनारे की अरबी और है तथा नजद की कुछ और। ऐसे ही हजाज, मिश्र, फिलास्तीन, शाम अलइराक, अदन और यमन की अरबी में भेद मिला।

यहाँ पर तुर्कों के दिनों का एक किला है, जिसमें घोड़े रखे हुए हैं। नगर के चारों ओर एक दीवार है और चार-पाँच बड़े-बड़े फाटक हैं जहाँ प्रत्येक फाटक पर सिपाहियों का पहरा लगा रहता है। यहाँ के लोग बड़े मिलन सार हैं। यहाँ से एक मील की दूरी पर एक गरम पानी का तालाब है, जो कि एक प्राकृतिक स्रोत है। इस नगर के चारों ओर बीस मील तक हरियाली ही हरियाली है, जहाँ सैर करने से मन प्रसन्न हो जाता है, परन्तु **अलहसा** से **रयाज** तक पंद्रह दिन मार्ग बालू का लंबा चौड़ा स्थल है। उसमें सुनसान जँगल और मिट्टी के अतिरिक्त कहीं-कहीं पहाड़ियाँ भी हैं, परन्तु दस दिन चलने के पश्चात् एक कुआँ भी आता है। उस कुएं पर भी वहाँ के जानकार ही पहुँच सकते हैं। अलहसा में गुलामों की अवस्था देख कर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं एक सप्ताह प्रचार करके आगे चल पड़ा।

रयाज को प्रस्थान

जब मैं, अलहसा से चलने लगा तो एक सज्जन जिनका नाम शेख अबूबकर था और, जो कि हनफी हैं, उन्होंने मुझसे कहा कि बिना

काफिले के अकेले मत जाओ। इसका कारण बतलाते हुए उसने कहा कि शेख मेरे पिता के समय में लगभग पचास सिंधी मुसलमान जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी थी, अलहसा पैदल आये थे। उन सिंधी लोगों ने मेरे पिता से खजूर माँगी और उनको एक बोरी खजूर दे दी गई। वह बिना काफिले के रयाज की ओर चल पड़े। मार्ग में वे सबके सब मर गये। केवल एक मनुष्य बच गया था, जो कि पागल हो चुका था। उसी समय एक काफिला रयाज से आ रहा था, जो उस पागल को वापिस अलहसा ले आया। कुछ दिनों के पश्चात् वह पागल भी मर गया।

मैं यह भली प्रकार जानता था कि मेरा मार्ग रयाज तक अतीव भयानक है, क्योंकि बिना काफिले के कोई व्यक्ति मरु-भूमि को पार नहीं कर सकता। यहाँ से रयाज तक कोई सड़क या कोई मार्ग भी नहीं है। यदि कोई काफिले के साथ जा रहा हो और केवल दस-पँद्रह मिनट सुस्ताने के लिए बैठ जाये और काफिला आँख से ओझल हो जाये तो मालूम नहीं होता कि काफिला किधर गया और मार्ग किधर है, क्योंकि सब ओर रेत ही रेत है, जिस पर तनिक हवा चलने से पाँव का खोज नहीं मिल सकता।

काफिला चलने में अभी दो मास की देरी थी, इसलिए मैं परमात्मा के सहारे चल पड़ा। मैंने लगभग साढ़े सात सेर जल साथ में लिया और छोटे-छोटे पैंतालीस बिस्कुट और थोड़ी सी चाय उठाली। कपड़ों और कंबल आदि के मिल जाने से कुल दस सेर बोझ मेरी पीठ पर लद गया।

दो घण्टे चलने पश्चात् मैंने एक प्याला पानी गरम किया और उसमें थोड़ी सी चाय डाली अैर बिना चीनी मिलाये एक बिस्कुट खाकर वह चाय का पानी पिया। इसी प्रकार दोपहर और रात्रि को बिना चीनी वाली चाय और बिस्कुट खाकर निर्वाह किया। बिना चीनी की चाय से प्यास बहुत कम लगती है। प्रत्येक दिन केवल तीन प्याले चाय और तीन बिस्कुट खाता था। पाँच दिन तक तो अच्छी प्रकार चलता रहा, परन्तु छठे दिन कुछ शिथिलता आ गई। यह वैसी शिथिलता थी जैसी जुलाब लेने के उपरान्त मालूम होती है। चाय और बिस्कुट खाने से शिथिलता भले ही आ जाये, परन्तु दो मास तक मनुष्य मर नहीं सकता।

मैं चल रहा था। जहाँ कहीं मार्ग का भ्रम हो जाता तो मिकनातीमी

सूई से सहायता ले लेता था। मेरा बूट कभी नया तो था ही नहीं, मार्ग में वह बिल्कुल फट गया। वहाँ एक विशेष प्रकार का विषैला काँटा होता है, जो कि चलते समय तो साधारण पीड़ा करता है, परन्तु रात्रि को इसका विष पाँव में फैल जाता है और मनुष्य चलने से रह जाता है, परन्तु मैंने पिता परमात्मा की अमृतवाणी, जो कि वेद हैं उनका प्रचार करने के उत्साह में इन काँटों का विचार न किया और उसके भरोसे पर धैर्ययुक्त चलता ही गया।

मार्ग में एकांत होने से मन अति एकाग्र हो जाता है और परमात्मा की भक्ति में अधिक मन लगता है। इस प्रकार भक्ति करते हुए नौ दिन हो गये और पानी भी निबट गया, परन्तु आज कुछ पक्षी आकाश में विचरते हुए दिखाई दिये, जिससे अनुमान हो सकता था कि जल समीप है। चलते-चलते दसवें दिन मध्याह्न को कुछ ऊँट-बकरियाँ चरती हुई दिखाई दी। धीरे-धीरे कुएँ पर जा पहुँचा। यहाँ दस-बारह कुएँ साथ-साथ हैं, जिनका जल पृथ्वी से दो गज नीचा है। मेरा अनुमान है कि मरुभूमि में जल का इतना समीप होना, वह कोई स्त्रोत होना सिद्ध करता है।

मैं कुएँ पर बैठ गया। थोड़ी देर में बद्दू लोग अपने ऊँटों और बकरियों को पानी पिलाने के लिए वहाँ आये। मुझे उनसे बहुत सा दूध और खजूरें मिली, जिनसे मैंने दस दिन की बची हुई क्षुधा शाँत की। मैं दो दिन वहाँ ठहरा। रात-दिन बद्दू लोग मेरे पास बैठ कर मेरी बातें सुनते रहते थे और कहते थे कि आप सदैव हमारे पास रहिये, हमारी बकरियाँ और ऊँट चराइए। हम तुम्हें खाने को खजूर और पीने को ऊँटनियों का दूध देंगे और दो विवाह कर देंगे, परन्तु ये सब कैसे हो सकता था ? अभी रयाज पहुँचने में पाँच दिन यात्रा शेष थी। मैंने पाँच दिन का जल साथ लिया और परमात्मा की दया से रयाज कुशलतापूर्वक पहुंच गया।

सूर्य ढल चुका था। जलालातल मलिक अबदुलअजीज इबन सऊद मोटर में बैठकर सैर को जा रहे थे कि मैं अकस्मात् उनको उनके मकान के सामने ही मिल गया। मुझे अपरिचित देखकर वह रुक गये। मैंने जलालातल मलिक को नमस्ते की और उन्होंने भी नमस्ते में उत्तर दिया। उन्होंने मेरा नाम पूछ कर अपने गुलाम के साथ शाही महल में भेज दिया और दूसरे दिन दस बजे दरबार में आने के लिए कह दिया।

मैं यह देखकर अचम्भित रह गया कि इस मरुभूमि में मोटरें कहाँ से आ गई, क्योंकि मोटरों के लिए कोई विशेष सड़क नहीं है। यहाँ तीन सौ के लगभग मोटरें हैं। उनके ड्राइवर भारतीय, ईरानी और कुछ अरब लोग भी हैं। यहाँ से मक्का तक तीस दिन का पैदल मार्ग है, परन्तु मोटरों को भी आठ दिन से कम नहीं लगते। कारण यह है कि मोटरों के लिए उचित सड़क न होने से उन्हें बहुत मोड़-तोड़ और चक्कर दे कर ले जाना पड़ता हैं।

नगर बहुत प्राचीन और पुराने ढँग का है। उसकी गलियाँ और बाजार सड़कें हैं, परन्तु नगर के चारों ओर हरियाली है, क्योंकि लोग कुओं से खेतीबाड़ी करते हैं।

दूसरे दिन मैं ठीक दस बजे दरबार में पहुँच गया। वहाँ सुल्तान के घराने के बड़े-बड़े व्यक्ति और मन्त्रिगण बैठे हुए थे। दरबार में पहुँचते ही मैंने जलालातल मलिक को सईंदा (नमस्ते) कहा। उन्होंने मेरे साथ हाथ मिलाया। सुल्तान का हाथ उठाना था कि सारी सभा उठ खड़ी हुई। जब तक मैं नहीं बैठा, सब खड़े रहे। यह नियम अरब की सभी सभाओं में पालन किया जाता है।

ईश्वर-स्तुति वेद मंत्र उच्चारण करने के पश्चात् मैंने जलालातल मलिक और अन्य उपस्थित महानुभावों से कुशल समाचार पूछा। इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ हो जाने पर मैंने वहीं प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। वहाँ सभा में मिश्र का रहने वाला एक डाक्टर था, जो कि सिगरट पी रहा था। मैंने उसे सिगरट पीने से रोका और मादक वस्तुओं के अवगुण बताये। इबनसऊद ने बताया कि उनके वहाची मत में तम्बाकू निषिद्ध है, परन्तु वहाबी मत के सिवाय दूसरे मत वाले पीते हैं। सभा के सदस्यों पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी समय सुल्तान इबनसऊद ने एक नया नियम बनाया, जिसमें तम्बाकू पीना और तम्बाकू बेचना बन्द कर दिया। यह आज्ञा नजद और हजाज में दूसरे दिन ही कार्यरूप में आ गई। केवल मक्का, मदीना, जिद्दा को छोड़ कर शेष सब नजद और हजाज में तम्बाकू बेचना अपराध हो गया। यहां सारे बाजार में पूछने पर भी किसी दुकान पर तम्बाकू न मिलता था। यद्यपि मेरा अभिप्राय केवल तम्बाकू पीना बन्द कराने से था, परन्तु जहाँ तम्बाकू पीना राज्य की ओर से बन्द हो गया वहाँ हर प्रकार की नशीली वस्तु का प्रयोग भी बन्द हो गया। नजदी लोग अब

तम्बाकू को सिक्खों की तरह छूते तक नहीं।

दूसरे दिन जब दस बजे राज्यसभा में पहुँचा तो वहाँ एक तलाक का अभियोग उपस्थित था। बात यह थी कि एक युवती ने अपने भाई पर अभियोग चलाया था कि वह उसको खर्च नहीं देता। भाई का इस आक्षेप का यह उत्तर था कि वह सातवाँ तलाक ले चुकी है और उसके दो बच्चे होने से अब कोई उससे विवाह नहीं करता। साथ ही बहिन अपने भाई का खाना भी नहीं बनाती थी बल्कि अपना खाना पृथक् बनाना चाहती थी, इसलिए वह उसे अलग खर्चं नहीं दे सकता था।

इस अभियोग के विषय में सुल्तान ने मेरी सम्मति चाही और पूछा कि आपकी तलाक के विषय में क्या राय है। मैंने उत्तर दिया कि आश्चर्य की बात है कि अरब में तलाक की प्रथा इतनी प्रचलित है कि सवेरे विवाह हो और दिन छिपने तक अगर स्त्री को तलाक हो जाये तो अपने पति को छोड़ कर नया विवाह कर ले। क्या अरब लोग इसमें शर्म नहीं मानते ? तलाक की प्रथा भारतवर्ष के मुसलमानों में भी है, परन्तु नाम मात्र की। तलाक में सबसे बड़ा दोष यह है कि जब एक संतान नहीं हुई तब तक तो पति–पत्नी का एक–दूसरे को त्याग कर नया विवाह हो सकता है, परन्तु जहाँ स्त्री से दो–तीन सन्तानें हो गई तो उसका विवाह होना असम्भव हो जाता है और पिता का सहारा न होने से सन्तान भटक जाती है। इसीलिए आर्यसमाज विवाह सम्बन्ध विच्छेद की आज्ञा नहीं देता और हिन्दू धर्म के अन्दर विवाह का सम्बन्ध एक अति पवित्र और अटूट माना गया है। सुल्तान को मेरी बातचीत बहुत भायी और बोले, हमें दुःख है कि यह ऐसी बुरी प्रथा चल पड़ी हैं कि विवाह के पश्चात् पुरुष को स्त्री पर और स्त्री को पुरुष पर यह विश्वास नहीं होता कि वे कितने दिन तक साथ रह सकेंगे। इस डाँवाँडोल अवस्था में गृह नरक के सदृश बन जाता है। अरब के बड़े–बड़े विद्वान् इस समस्या का हल ढूंढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

ऐसा ही थोड़े ही दिन के प्रचार के उपरान्त जलालातल मलिक इबनसऊद ने अपनी दाढ़ी पर उस्तरा फिरवा दिया और केवल ठोड़ी पर थोड़े से बाल रहने दिये। बस फिर क्या था, यथा राजा तथा प्रजा। बहुत से भारतीय मोटर ड्राइवरों ने भी अपनी अरबी सूरत बना ली।

फिर एक दिन मैंने यह प्रचार किया कि केवल एक परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए वहाँ बहुत से लोग पीरों, सूफियों कब्रों पर जा कर

मुरादें माँगा करते थे, मैंने बतलाया कि यह कितना अन्याय है कि एक परमात्मा को छोड़कर कब्रों और जड़ों की पूजा की जाये। जिन दिनों ऋषि दयानन्द भारतवर्ष में आर्यसमाज का प्रचार कर रहे थे उन दिनों में मुहम्मद इब्न अब्दुलवहाब नामी एक व्यक्ति पीरों, सूफियों, बलियों, रसूलों और नबियों आदि की कब्रों से मुरादें माँगने के खिलाफ सारे नजद में प्रचार कर रहा था। केवल एक परमात्मा की भक्ति करना सिखाता था, इसलिए सारे नजदियों को वहाबी कहते हैं। इन दिनों नजद और हजाज में तुर्की का शासन था, इसलिए वहाबी लोग कब्र परस्ती की रोकथाम न कर सकते थे, परन्तु अब दशा और थी, मेरे वहाँ पहुँचने से प्रथम ही सुल्तान इबनसऊद कई एक कब्रें गिरा चुके थे, परन्तु आज मेरे प्रचार से नजदोहजाज के सारे मकबरों को गिराने की आज्ञा निकाल दी। मक्का व मदीने के मुतबरिक व प्रसिद्ध कब्रिस्तान जन्नतुल्बकी व जन्नतुल्माले गिरा दिये गये। जिद्दा में हव्वा (आदम की स्त्री) की कब्र भी गिरा दी गई ताकि लोग कब्रों की पूजा से हटें। एक बार राज्य सभा में किसी ने अब्दुलकादिर जीलानी का नाम लिया अर्थात् परमात्मा के नाम के स्थान पर उसने सुन्नियों के एक पीर का नाम लिया। इस पर सारी सभा ने उसे मुशरिक (अर्थात् परमात्मा के साथ शरीक करने वाला) बता कर दुतकारा, इसलिए अब किसी की सामर्थ्य नहीं कि मक्का मदीना और जिद्दा को छोड़कर सारे नजदोहजाज में केवल परमात्मा के अतिरिक्त किसी नबी व पीर से मुरादें माँगे। मक्का, मदीना व जिद्दा में भी ऐसी ही आज्ञा प्रत्येक नजदी व हजाजी को है कि वह परमात्मा के अतिरिक्त किसी और का नाम न लेवें, परन्तु यहाँ पर अंग्रेजों की प्रजा के भारतीय मुसलमान बसे हुए हैं और भी अन्य भागों के मुसलमान पड़े हुए हैं और आते-जाते हैं उनके लिए ऐसी आज्ञा नहीं है, परन्तु, जो लोग वहाँ कारोबार वा लेन-देन करते हैं उनको वहाबियों का पक्ष लेना ही पड़ता है, क्योंकि सुल्तान इबनसऊद का शासन है और उन्हीं की कृपा से बाहर वालों को ठहरन की आज्ञा मिली हुई है। वे उनको अपने पुत्रों की भाँति समझते हैं। सुल्तान किसी को अपने देश में बसाने के लिए बाध्य नहीं है, क्योंकि वह स्वतंत्र शासक है। उसके फैसले के ऊपर प्रिवी कौंसिल नहीं है, जिसे वह चाहे रहने की आज्ञा दे या न दे, इसलिए वहाँ के सभी बसने वालों को उसका सम्मान करना ही पड़ता है।

एक दिन मैंने प्रचार किया कि विवाह एक ही होना चाहिये और जब तक प्रथम स्त्री व पुरुष जीवित हो, दूसरा न करना चाहिये। एक से अधिक विवाह करने से घरों में लड़ाई होती रहती है और स्त्रियों के साथ अन्याय बरता जाता है। नित्यप्रति की कलह से घर नरक के सदृश बना रहता है।

एक दिन गुलामों को स्वतंत्र करने पर उपदेश दिया, क्योंकि स्वयं जलालुल्सुल्तान के गुलाम और लौंडियाँ (गुलाम स्त्रियाँ) दो सहस्र से कम नहीं थे। इसके अतिरिक्त शाही घराने के प्रत्येक सदस्य ने भी बहुत गुलाम स्त्री और पुरुष रखे हुए थे। नजदोहजाज में सभी धनवानों ने बहुत से गुलाम रखे हुए हैं। इन गुलामों का लेन-देन भेड़ और बकरियों के सदृश होता है। उनसे रात-दिन कड़ा काम लिया जाता है और खाने को नाम मात्र दिया जाता है। आराम करने का पूरा समय भी नहीं दिया जाता है। किन्तु सुस्ती अथवा चूक हो जाने पर कोड़े बरसाये जाते हैं। सबसे बड़ा अनर्थ यह है कि गुलाम स्त्रियों के साथ व्यभिचार किया जाता है और उसे हलाल (न्याययुक्त) समझा जाता है। मनुष्यता इसकी आज्ञा नहीं देती। इसमें अरब के लोगों का कुछ दोष नहीं, दोष है उन विद्वानों का, जो गुलामों के विषय में ऐसी बे-सिर पैर की बातों को शरीअत की पुस्तकों में स्थान दिये हुए हैं और इनकी उपेक्षा में जरा भी शब्द नहीं निकालते। जब तक धर्म पुस्तकों में ऐसी बातों की आज्ञा मिलती रहेगी तब तक गुलामी और स्त्रियों की बिक्री इस्लाम के नाम पर धब्बा बनी रहेगी। मुसलमान भाइयों से यह आशा है कि वे विशेषता से उनके विद्वान् इन बुरे रिवाजों को दूर करने के पुण्य के भागी बनेंगे। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो खुले शब्दों में स्वीकार करें कि इस्लाम में सबके साथ एक-सा व्यवहार नहीं है और इस्लाम बराबरी का ढोल पीटना बन्द कर दें। यह बात तो उन्हें वैदिक धर्म से ही मिलेगी जहाँ प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री हो या पुरुष सबको एक-सा अधिकार है।

एक उपदेश नजदो हजाज के बद्दू लोगों के अन्याय के विपक्ष में था। जब से इस्लाम चला है, मुसलमान लोग हज्ज करने को अरब जाते हैं, परन्तु बद्दू लोग हाजियों को मारना अपना धर्म समझ चुके हैं। जिद्दातायफ के आस-पास तो सारी पृथ्वी हाजियों के लहू से रँगी पड़ी है। मक्का से मदीना की ओर हाजियों का बड़े से बड़ा काफिला भी जाता था तो बद्दू प्रत्येक मनुष्य से दो पौंड के हिसाब से टैक्स लेते थे

और यदि काफिला वाले यह टैक्स देने में जरा भी विपत्ति करते थे तो उनको गोलियों का निशाना बना दिया जाता था। जब बड़े–बड़े काफिलों का यह हाल था तो छोटे–छोटे झुण्डों का क्या हाल होता होगा। छोटे–छोटे गाँव वाले एक–दूसरे पर चढ़ाई कर देते थे और उनका माल असबाब भेड़–बकरी और ऊँट आदि सब कुछ छीन कर ले जाते थे। जलालतल्सुल्तान इबसऊद से पहले तुर्कों का शासन था। तुर्कों की ओर से मक्का का एक सैयद शरीफी हुसैन नजदोहजाज का वाइसराय (प्रतिनिधि) था, जिसके पास छोटे–छोटे गावों वाले अपनी करुणा कथा सुनाने जाया करते थे। वह इन्हें आश्वासन देकर लौटा दिया करता था कि आज अमुक गाँव में सिपाहियों का जत्था भेज देंगे, परन्तु वह बद्दूओं को न मारना चाहते थे और न उनमें ऐसा करने की शक्ति थी। साथ ही शरीफहुसैन को विश्वास था कि बद्दू लोग हजरत मुहम्मद साहब के ननिहाल हैं, इसलिए उनको मारना गुनाह है, जिससे आये दिन निरपराध कई हत्याएँ होती रहती थीं। मैंने जलालातल्मलिक की सेवा में निवेदन किया कि बद्दूओं का सुधार किया जावे, जिससे शाँति फैले। मेरे याद दिलाने से पहले भी सुल्तान ने इस विषय की ओर विचार किया था, परन्तु अब तो उसने उचित कार्य करने का निश्चय कर लिया, उसी समय एक बड़ी सेना और कुछ मोटरें विद्रोही बद्दूओं के दमन के लिए चल पड़ी, जिससे थोड़े दिनों में ही विद्रोहियों से ऊंट बकरियाँ और माल असबाब छीन लिया गया। उसके दण्ड देने का तरीका भी विचित्र था। सारे नगर वालों को बुलाकर उनके सामने ही अपराधी को दंड दिया जाता था। घातकों को तो वहीं तलवार के घाट भी उतार दिया जाता था और वध किये जाने पर मृत देह को शाम तक लोहे के जंगले के साथ लटकाये रखते थे, जिससे लोगों को शिक्षा मिले और मृत मनुष्य के फोटो बड़े नगरों के किवाड़ों पर लगा दिए जाते थे, जिससे इस दंड का प्रभाव लोगों पर बहुत दिनों तक बना रहे। इन कड़े उपायों से मक्का, मदीना, जिद्दा, तायफ और सारे नजदोहजाज में शाँति फैल गई। अब जँगल में सोना भी हथेली पर रख कर जाओ तो कोई नहीं छीनता।

मैं इसी प्रकार से दो मास तक दरबार में और नगर में प्रचार करता रहा, जिसका अच्छा प्रभाव पड़ा।

जलालातलमलिक इबनसऊद ऊँचे कद का मनुष्य है। सिर पर

एक सुनहरी रूमाल बाँधे रहता है और उसके ऊपर सुनहरी, अकाल अर्थात् तीन रस्सियाँ सी होती है, जो कि ताज के सदृश चमकती हैं। उसका मुख अति प्रभावशाली है, परन्तु आँख पत्थर की बनी हुई है, जो कि बहुत ध्यान से देखने पर ही बनावटी मालूम होती है। शरीर पर एक लम्बा कुर्ता और उसके ऊपर कोट की तरह का एक वस्त्र, जिसे 'अवा' कहते हैं, पहनते हैं। 'अवा' बहुत ही सुनहरी होती है और उसे दूर से ही देखकर शाही पहरावे का आभास हो जाता है। लम्बे कुर्ते के नीचे एक पायजामा पहनते हैं। जैसा कहा है—यथा राजा तथा प्रजा। ऐसे ही फैशन का पहनावा वहाँ सारे नजदोहजाज में पहना जाता है। रयाज में भारतीय मोटर ड्राइवर भी नजदी पहनावा पहनते हैं। मैं जब रयाज में पहुंचा था तो जलालातलमलिक इबनसऊद ने मुझे भी शाही पहनावा दिया था, जिसे मैं वहाँ पहनता था।

जलालतलमलिक इबनसऊद की जितनी भी प्रशँसा की जाये, थोड़ी है। वह बड़ा कार्यकुशल शासक है। उसके दो शाही अतिथिगृह हैं। एक तो साधारण व्यक्तियों के लिए है, जिसमें सेना के अतिरिक्त प्रत्येक पथिक निवास कर सकता है। दूसरा खास शाही निवास गृह है, जिसमें वे अतिथि ठहर सकते हैं जिनके पास सुल्तान का आज्ञापत्र हो। शाही घराने के जितने लोग हैं उन्हें मासिक वेतन मिलता है, परन्तु राज्य के जितने सेवक हैं उन्हें वार्षिक वेतन मिलता है। यहाँ एक बड़ी भारी अरबी की पाठशाला भी है, जिसमें निःशुल्क पढ़ाई होती है, जो भारतीय मुसलमान वहाँ अरबी पढ़ने के लिए जाते हैं, उन्हें दो पौंड मासिक वजीफा मिलता हैं। वहाँ प्रत्येक भारतीय छात्र पढ़ सकता है, परन्तु ठहर नहीं सकता है, जिसमें तम्बाकू पीने की लत न हो अथवा, जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी पीर व वली आदि का नाम न लेता हो। यदि यह बात उसमें न हो तो उसको भारतीय ड्राइवरों की रोटी पकाने की चाकरी तो मिल ही जाती है।

रियाज में प्रत्येक सप्ताह के पश्चात् मक्का, मदीना, जिद्दा से डाक आती-जाती रहती है। विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ एक ही स्वर से जिह्वा को मुँह के अन्दर हिला कर एक विचित्र प्रकार की बकरे के सदृश स्वर निकालती हैं। जब बारात लड़की वाले के घर जाती है तो बारातियों को चावल, घी और खाँड डाल कर खिलाते हैं। इसके बाद कॉफी पिलाते हैं। निकाह पढ़ा जाता है और लड़की बारात के साथ

अपने घर चली जाती है। एक ही समय का खाना कन्या वालों को खिलाना पड़ता है, परन्तु जितना धन कन्या वाला व्यय करता है वह मेहर बाँधते समय निकाल लेता है। कई-कई तो ऐसे निकलते हैं कि बारात आज शाम को घर में आने वाली है और वह पुत्र वाले से कह रहे हैं कि दस या बीस पौंड मेहर दो, क्योंकि उसके कोई खेती बाड़ी नहीं है और न उसके बकरियाँ और ऊटिंनयाँ ही हैं, केवल कन्याएँ हैं। यदि उनकी उचित मेहर न ली गई तो सारी आयु उन्हें सेंत में ही पालते रहे। किसी-किसी विवाह में मेहर सस्ती भी पड़ जाती है, परन्तु सबसे सस्ता विवाह बद्दुओं का है।

जलालतलमलिक इबनसऊद ने मुझे हजाज, मक्का, मदीना में "हिज बुल्लाह" के प्रचार करने की आज्ञा दे दी। अब हज्ज में केवल एक मास रह गया था और पैदल यात्रा भी एक मास की थी, इसलिए मैंने चलने की तैयारी की। सुल्तान ने फरमाया कि पँद्रह दिनों के बाद वे सब मोटरों में बैठ कर मक्का जायेंगे, यदि मेरी इच्छा हो तो उन्हीं के साथ चलूँ, परन्तु मैं प्रत्येक ग्राम में से प्रचार करता हुआ पैदल जाना चाहता था इसलिए सुल्तान से बिदा माँगी।

मक्का को प्रस्थान

परमात्मा पर भरोसा रख कर मैं रियाज से पैदल चल पड़ा और शुकरा, मरात आदि में प्रचार करते हुए बीस दिन में दवादमी जा पहुँचा। मार्ग में पानी बहुत दूर-दूर पर मिलता है। दोपहर का समय था, मैं यहाँ प्रचार कर रहा था कि मैंने मोटरों की घर्राहट सुनी। बाहर जाकर देखा तो धड़ाधड़ मोटरें आ रही थी और आन की आन में तीन सौ मोटरें आ पहुँची और शहर के बाहर कतारें भी लग गई। देखा तो जलालतलमलिक इबनसऊद आये हुए हैं। मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने मेरा स्वागत किया और मुझे अपने साथ चलने का आग्रह किया दूसरे दिन सवेरे एक सौ मोटरें, जिनमें शाही घराने की स्त्रियाँ थीं मक्का की ओर चल पड़ी। इसके एक घंटा बाद दो सौ मोटरें जिनमें शाही घराने के पुरुष और कुछ गुलाम थे मक्का की ओर चल पड़ी। मैं जलालातलसुल्तान की मोटर में बैठा था। अब मोटरें चलने लगी तो दोनों ओर निर्धन मनुष्य कतार बाँध कर बैठ गये। सुल्तान ने सबको एक-एक रयाल दिया। मैं समझता हूं कि चार-पाँच से कम न होंगे। वैसे ही जब मोटर चल पड़ी तो मार्ग में बद्दू लोग मोटरों को और

जलालातलसुल्तान को देखने के लिए खड़े रहते थे। जब मोटर दीन बद्दुओं के पास से गुजरती थी तो सुल्तान मोटर को ठहरा कर इनको एक-एक रयाल देते थे। इससे अधिक किसी अमीर की दान वीरता का क्या प्रमाण हो सकता था, परन्तु भारत वर्ष के कुछ मुसलमान भाई इनको बहाबी कहकर पुकारते हैं और कई प्रकार की झूठी-मूठी बातें फैलाया करते हैं। मैं उनकी सेवा में निवेदन करूंगा कि वह औरों की सुनी-सुनाई बातों पर ध्यान न देकर सुल्तान के पास जायें और स्वयं उनको देखें, परन्तु वैसे लोगों को यह डर लग गया है कि वहाँ जाने से कहीं उनको भी वहाबी न बनना पड़े, इसलिए वहाँ जाने का कष्ट नहीं उठाते और घर बैठे तरह-तरह के अनुमान लगाया करते हैं। जहाँ तक मेरे अनुभव में आया है, इस समय जलालातलसुल्तान से बढ़कर अरब में अधिक न्याय-प्रिय शासक नहीं है। इससे यह आशय मत लेना कि मैं अरब के दूसरे शासकों से घृणा करता हूँ। सत्य तो यह है कि अरब के शासक और उनकी प्रजा उनके भारतवर्षीय सहधर्मियों से कहीं अधिक शुद्ध हदय और शुद्ध व्यवहार रखती है। हमारे देशी भाइयों की भाँति ओछी-ओछी बातों पर तकरार नहीं बढ़ाते। एक और अच्छी बात उनकी यह है कि भारतवर्षीय मुसलमान वहाँ जाकर शोरश भी करने का प्रयत्न करें तो वे उनकी एक नहीं सुनते। कितना अच्छा हो कि भारतवर्षीय मुसलमान इस देश को अपना देश समझें और इसी के हित में अपना हित समझें, क्योंकि यदि उन्हें अरब से ही प्रेम है तो वहीं क्यों नहीं चले जाते ? अन्त में मोटरें शायेरा पहुँच गई।

एहराम की बांधना

शायेरा से चल कर सब मोटरें शाम के समय खेल में पहुँच गईं। यहाँ से मक्का समीप ही है, इसलिए रात भर वहीं ठहरे। दूसरे दिन सवेरे उठकर सबने एहराम बांधा, क्योंकि मक्का की सीमा यहीं से आरम्भ होती है। मक्का में बिना एहराम बाँधे जाना धर्म संगत नहीं है, जो भारतीय मुसलमान जहाज से मक्का को आते हैं उन्हें लिम-लिम पहाड़ी, जो कि यमन में है, वहाँ से जहाज में बैठे हुए ही एहराम बाँधना पड़ता है।

अब मैं यह बताऊँगा कि एहराम क्या है ? एहराम दो धोतियों का नाम है, जोकि बिना सिले हुए कपड़े की होती हैं। एक धोती बाँधनी पड़ती है और दूसरी ओढ़ी जाती है। सिर पर कोई वस्त्र नहीं लिया

जाता। सोते समय भी सिर और पैरों को नंगा रखना पड़ता है चाहे कितना ही जाड़ा क्यों न पड़ता हो। यदि कोई भूल से सिर अथवा पाँओं पर वस्त्र ले ले तो उसे दंड देना पड़ता है, जो कि कफारह के नाम से प्रसिद्ध है। एहराम की अवस्था में कोई व्यक्ति किसी जीव को नहीं मार सकता, चाहे वह सिर की जूँ ही क्यो न हो। मैंने भी स्नान करके गुरुकुल के ब्रह्मचारियों सी धोती बाँधी। सवेरे मोटर चली और दोपहर को हम मक्का जा पहुँचे।

बेतल्लाह अर्थात्–अल्ला मियां का घर या खाना काबा का वर्णन

मक्का एक पहाड़ी नगर है। उसके चारों छोटे–छोटे पहाड़ हैं। बेतल्लाह याने खुदा के घर या, जिसे खानाकाबा कहते हैं, उसके पास जब हम पहुँचे तो मोटर से उतर पड़े। इसके पश्चात् थोड़ा सा चले और खुदा के घर पहुँच गये। खानाकाबा अथवा खुदा का घर मक्का नगर के बिल्कुल बीचों बीच बना हुआ है। यह एक खुला मैदान हैं, जिसके चारों ओर बड़ी–बड़ी दीवारें हैं, जिसे हरम शरीफ कहते हैं और १६ फाटक हैं और अन्दर चारों ओर बरामदे बने हुए हैं। बरामदों से आगे जाकर एक खुला मैदान है, जहाँ पत्थर की छोटी छोटी कंकड़ियाँ बिछी हुई हैं, जिस पर हाजी लोग बैठते हैं। इस मैदान के बिल्कुल बीच में बेतअल्लाह याने खुदा का घर या खाना–काबा बना हुआ है। खुदा के घर में घुसने के लिए बाबुस्लाम से (एक फाटक का नाम है) जाना पड़ता है। मैं उस फाटक से भीतर गया और खाना काबा अर्थात् खुदा के घर के समीप जा पहुँचा। इस छोटे से मकान के चारों ओर एक काला कपड़ा लगा रहता है और इस पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। इस कपड़े को अरबी में किसवातल्लाह अर्थात् खुदा के घर की पोशाक कहते हैं। पहले तो यह काला कपड़ा हर वर्ष मिश्र से ऊँट पर लाद कर लाया करते थे, जिसे अलमहम्मल कहते हैं, परन्तु अब इबनसऊद ने मिश्र से इसका आना बन्द कर दिया है और अब यह किसवातल्लाह मक्का में ही बनता है। मक्का में दारूलकिसवात: अर्थात् पोशाक का गृह एक भारी मकान है। इसमें बैठ कर सियाल कोट (पँजाब) के मुसलमान हर वर्ष इस खुदा के घर की पोशाक सीने वालों को वार्षिक वेतन मिलता है। केवल इन्हीं को नहीं, बल्कि सारे भारतीय मोटर ड्राइवरों और सारे नजदोहजाज के सेवकों को वार्षिक

वेतन मिलता है। साप्ताहिक या मासिक वेतन की यहाँ प्रथा ही नहीं है।

आपका ध्यान फिर खाना काबा की ओर दिलाता हूं। खाना-काबा के चारों ओर चार मुसल्ले हैं, जिनके नाम यह हैं (१) हन्फी मुसल्ला (२) मालकी मुसल्ला (३) हनबली मुसल्ला और (४) शाफी मुसल्ला। ये खाना-काबा के चारों ओर बने हुए हैं, जिनके नीचे बैठ कर प्रत्येक धर्म का मनुष्य कुरान पढ़ सकता है।

बाबुस्सलाम से घुस कर मैं खाना-काबा के पास पहुंच गया। खाना-काबा पहुँचने से पहले मुकाम इब्राहिम आता है, जो खाना के पास ही है और यहाँ पर दो रकातें नमाज़ की पढ़नी पड़ती हैं। इसके पश्चात् तवाफ याने परिक्रमा आरम्भ हो जाती है। परिक्रमा खाना-काबा के चारों ओर की जाती है। हर तवाफ(परिक्रमा) पर हज्जर अल असवद अर्थात् काले पत्थर को चूमना पड़ता है, जो कि दीवार के एक कोने में जड़ा हुआ है। हजर अल असवद का अर्थ है—काला पत्थर। यह पत्थर एक सफेद संगमरमर की तरह है और उसमें कुछ स्वभाविक नक्शो निगार काले से हैं। यह नक्शे अच्छी तरह देखने पर आदमी की सूरत से मिलते-जुलते दिखाई देते हैं, परन्तु इन नक्शों को पूरा आदमी भी नहीं कह सकते। जब मैं भारत वर्ष था तो सुनता था कि हजर अल असवद शिवलिंग की भाँति है, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि वह शिवलिंग नहीं है। वरन् एक संगमरमर की शिला है, जिसमें मनुष्य की आकृति के सदृश कुछ नक्श काले से हैं और यह पत्थर दीवार के बाहर निकला हुआ नहीं है, बल्कि एक कौने में जड़ा हुआ है, जैसे कि स्मृति चिह्न दीवार में गढ़े हुए होते हैं। हर परिक्रमा करने पर इसको चूमना पड़ता है। हज के दिनों में चूमने वालों की इतनी भीड़ होती है कि प्रायः सिर फूट जाते हैं और फिर भी चूमने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, परन्तु अब इबनसऊद ने एक सिपाही हजर अल असवद के पास पहरे के लिए खड़ा कर दिया है, जो एक समय में एक को चूमने देता है।

भारतवर्ष में मुसलमान पश्चिम की ओर मुँह फेर कर नमाज़ पढ़ते हैं, परन्तु मक्का में जहाँ कि खुदा का घर है, सब लोग हजर अल असवद की ओर मुँह फेर कर नमाज़ पढ़ते हैं। जब मक्का के हरम शरीफ में खाना काबा के चारों ओर लोग खड़े होते हैं तो पूर्व की ओर की खड़ी हुई सफ़ (कतार) पश्चिम की ओर तथा पश्चिम की ओर खड़ी हुई सफ़ पूर्व की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ती है। इसी प्रकार

उत्तर की ओर खड़े हुए नमाजी दक्षिण की तथा और दक्षिण वाले उत्तर की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं। संसार के मुसलमान काबा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं, यदि उनका देश काबा के उत्तर की ओर है तो वे दक्षिण की ओर मुँह फेरेंगे, इत्यादि।

हजर अल असवद के सदृश मक्का के जबल तूर से ऐसे ही और भी कई पत्थर वहाँ मिलते हैं, परन्तु इस पत्थर के विषय में प्रसिद्ध है कि इसे आदिम (जगत् का प्रथम मनुष्य) बहिश्त (स्वर्ग) से लाया था। पूरी कहानी यों है कि आदम और उसकी स्त्री हव्वा सातवें आकाश पर खुदा के पास रहा करते थे। खुदा ने उनको कहा कि तुम बहिश्त की सब वस्तुएँ खा सकते हो, परन्तु सावधान! इस गेहूं के पौधे का फल न खाना, नहीं तो बहिश्त में से निकाले जाओगे। शैतान को यह कब मंजूर था। उसने उनको बहकाया, जिससे उन्होंने गेहूं के पौधे में से कुछ खा लिया। गेहूं को खाते ही उनको अपनी दशा का ज्ञान हो गया कि वह नंगे फिर रहे थे। उन्होंने तन ढकने के लिए पेड़ के पत्तों का प्रयोग किया। जब खुदा ने उनको वस्त्र पहने हुए देखा तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उन दोनों को बहिश्त से पृथ्वी पर पटक दिया। उस समय आदिम अपने साथ वहाँ से इस हजर अल असवद को भी साथ लेते आये थे।

क्यों जी, जब इतनी ऊंचाई से आदिम, हव्वा और पत्थर गिरे होंगे तो चकनाचूर क्यों न हो गये? जान पड़ता है कि अवश्य कोई सीढ़ी लगाई गई होगी, जिसकी सहायता से वे उतरे। इसके बिना तो किसी भी मनुष्य का उतरना असम्भव है। मुझे तो अब यह भय है कि किसी दिन खुदा भी न गिर पड़े, क्योंकि साईंस ने यह निश्चित रूप में बता दिया है कि आकाश एक शून्य वस्तु है, उसमें कोई तख्त नहीं ठहर सकता। जब तख्त नहीं तो खुदा कहाँ बैठता होगा? जहाँ बुद्धि काम नहीं करती वहाँ ईमान (अंधविश्वास) की सहायता मिल सकती है, इसलिए यदि खुदा को पाना चाहते हो तो वैदिक धर्म की शरण में आओ। वेद ही आपको सर्वव्यापक परमात्मा के दर्शन करा सकता है। हम खुदा और आदिम के विवादास्पद विषय को यहीं छोड़ते हैं और आपको फिर खुदा के घर, खाना-येकाबा में ले चलते हैं।

आपको स्मरण होगा कि काबे की परिक्रमा एहराम (दो धोतियाँ) बाँधे हुए नंगे सिर और नंगे पाँवों करनी पड़ती हैं। नँगे सिरों को देखने

से एक विचित्र बात यह दिखाई दी कि दमश्क (शाम) के बहुत से मुसलमान सिरों पर चोटियाँ रखते हैं तथा अरब के बद्दू और तरालस अरब के लोग भी सिर पर गाय के खुर के बराबर चोटी रखते हैं। ऐसे ही सात बार परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा करने पर बीर जम-जम, जो कि खानायेकाबा के बिल्कुल निकट है वहाँ चले जाते हैं। अरबी में बीर कुएँ को कहते हैं। जमजम एक कुआँ ही है। किसी समय में यह एक स्रोत था। अब उस कुएँ में से पानी खींच कर निकालते हैं और सब उसे थोड़ा-थोड़ा पीते हैं और सिर में डालते हैं। पानी जहाँ थोड़ा सा खारी है वहाँ गरम भी होता है। वहाँ से पानी पीकर सफावल मरवाह में जाते हैं, जो कि हरम शरीफ के पास ही है। यह दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। सफावल मरवाह और हरम शरीफ में लगभग एक फरलाँग की दूरी होगी। सफावल पहाड़ी से लेकर मरवाह तक सब हाजी लोग स्त्रियाँ और पुरुष सात बार दौड़ लगाते हैं।

सफावल मरवाह बाजार में है। वहाँ अधिकतर नाइयों की दुकानें हैं। वहाँ बैठ कर सिर मुँडवा लेते हैं और एहराम उतार कर अपने-अपने कपड़े पहन लेते हैं। फिर यात्री गृह में चले जाते हैं। राज्य की ओर से आज्ञा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पास एक मुअल्लम अर्थात् जानने वाले को रखे। उसकी फीस बीस रुपये होती है। मुअल्लम लोगों को आप हरिद्वार के पण्डों के सदृश समझिये। जैसे हरिद्वार स्टेशन पर पण्डे यात्रियों को घेर लेते हैं और "कहाँ के बास, कहाँ के बासी" कह कर चिल्लाते हैं उसी प्रकार ये मुअल्लम हाजियों का स्टेशन पर से ही चार्ज ले लेते हैं और सब यही कहते हैं कि तुम हमारे जजमान हो, जो यात्री मक्का के दर्शनों के लिए जिद्दा की बन्दरगाह पर उतरते हैं तो मक्का के मुअल्लम उनको जहाज पर से उतरते ही जा सम्भालते हैं और प्रत्येक मुअल्लम चिल्लाता है—"ऐ हाजी मैं तुम्हारा मुअल्लम हूं।" राज्य की ओर से बाहर सिपाही खड़े रहते हैं, जो बिना मुअल्लम साथ लिये किसी को भीतर नहीं जाने देते, इसलिए हर एक को बीस रुपये मुअल्लम की भेंट करने ही पड़ते हैं और वह उनके माल व असबाब का रक्षक बन जाता है। उनको अपने मुसाफिर खाने वा सराय में ले जाता है। यदि कोई यात्री बीमार हो जाये अथवा मर जाये तो मुअल्लम इसकी सूचना राज्य को देता है।

जिद्दा से मक्का पैंतालीस मील की दूरी पर है। मोटरें जिद्दा से

मक्का दो घँटे में आ जाती हैं। ऊँट और पैदल का दो दिन का मार्ग है। मार्ग में यद्यपि जँगल है, परन्तु हज के दिनों में स्थान–स्थान पर चाय और कॉफी की दुकानें खुल जाती हैं एवं पानी की दुकानें भी होती हैं। जहाँ पानी का एक गिलास दो पैसे में बिकता है और एक टीन (पीपा) पानी चार आने में मिलता है। सारे मक्का में सोमाली (सूडान की) स्त्रियाँ रात–दिन सिर पर पानी के घड़े रखे हुए '**हाजी मोया अरबा कुरोश**' की आवाज लगाती हैं अर्थात् ऐ हाजी लोगो, मोया (पानी) का एक टीन चार आने में लो। मोया हजाजी अरबी है, जो कि अरबी शब्द अल्मा का अपभ्रंश है, जिसके अर्थ जल हैं। जब सोमाली स्त्रियाँ मुसाफिर खानों और सराओं में हाजी मोया की आवाज लगाती है तो पंजाबी भाई उर्दू में उनसे पूछते हैं, "कौन मरा है ?" स्त्रियाँ यह समझ कर कि यह लोग पूछ रहे हैं कि क्या भाव दिया है, उत्तर में चार उंगलियाँ दिखा कर कहती हैं, "अरबाकुरोश", जिसका अर्थ है 'चार आने में'। इधर पंजाबी समझते हैं कि चार हाजी मर गये और पूछते हैं कि "कौन–कौन मरा है ?" सुना था कि एक बहरा कुछ बैंगन बाजार से ले कर घर जा रहा था कि किसी ने पूछा—"कहाँ जा रहे" तो उत्तर दिया 'दो आने के सेर'। वह हैरान हुआ और पूछा "बाल बचे तो सब कुशलपूर्वक हैं ?" उत्तर दिया "सबको भून कर खाऊँगा।" भाई, ऐसी ही दशा भारतवर्ष के हाजियों की होती है। बहुत से हाजी अरबी का अक्षर नहीं जानते और अरब के लोग उर्दू नहीं जानते, इसलिए सँकेतों से काम लेते हैं, परन्तु इस कमी को भारतवर्ष के व्यापारी लोग पूरा करते हैं। मक्का में लगभग हर वस्तु का लेन–देन होता हैं। जिद्दा बन्दरगाह के समीप होने से हर देश की हर वस्तु यहाँ मिलती है। किराये की मोटरें भी जिद्दा, मक्का, मदीना में चलती हैं। नजदोहज्जाज के राज्य की मोटरें भी लगभग पाँच सौ वहाँ होगीं। मक्का में एक अस्पताल भी हैं जहाँ बीमारों का मुफ्त इलाज होता है।

हज्ज मक्का से बाहर जबल अरफात में होता है

जब अरबी महीना जीअलहज्ज की नौ तारीख आती है तो सबको एहराम बाँधना पड़ता है और सब हज्ज करने की तैयारी करते हैं। उनका हज्ज जबल अरफात में होता है, जो कि मक्का से लगभग दस बारह मील दूरी पर है। नौ तारीख शाम को मिना पहुँच जाते हैं और रात्रि को मिना में ही ठहरते हैं। दूसरे दिन सवेरे मुजदलफा से होते हुए

जबल अरफात पहुंच जाते हैं, जो लोग अरबी मास जीअलहज्ज की दस को जबल अरफात पहुँच जाते हैं, उनका हज्ज तो हो जाता है, परन्तु, जो शाम के चार बजे के पश्चात् पहुँचता है उसका हज्ज नहीं हो सकता। जबल अरफात एक छोटी सी पहाड़ी है, जिस पर एक छोटी सी मसजिद बनी हुई है। उसके चारों ओर एक बड़ा मैदान बना हुआ है, जिसमें बबूल की काँटेदार झाड़ियाँ हैं और इस खूले मैदान में एक मसजिद भी बनी हुई है, जो कि नमरह के नाम से प्रसिद्ध है। इस मैदान में लोग अपने खैमे लगा देते हैं और शाम के चार बजे तक वहीं ठहरे रहते हैं। हज्ज जबल अरफात में होता है, मक्का में नहीं। कहते हैं कि जब खुदा ने आदम और हव्वा को बहिश्त से निकाल कर पृथ्वी पर पटका तो आदम कहीं जा पड़ा और उसकी सँगिनी कहीं जा पड़ी। एक–दूसरे को ढूँढ़ते–ढूँढ़ते हव्वा ने आदम को इसी पहाड़ी पर पहचाना था। जब इतने दिनों को खोया हुआ मियां उसकी बीबी को इसी पहाड़ी के ऊपर मिल सकता है तो फिर खुदा के यहाँ मिलने में क्या इनकार हो सकता है ? इसलिए मक्का, जिसको यह खुदा का घर मानते हैं, उसे भी छोड़ कर इस पहाड़ी, जबल अरफात, को हज करने के लिए चुना तो क्या बुरा किया ?

ठीक असर की नमाज़ के समय याने तीन–चार बजे शाम हाकिमेवक्त (उस समय का शासक) खुतबा (उपदेश) सुना देता है, जिस वर्ष मैंने हज्ज किया, उस समय हाकिमेवक्त जलालातलमलिक इबनसऊद था और तुर्की हकूमत की ओर से शरीफ हुसैन, जो वाइसराय मक्का का था, भाग चुका था। जलालातलमलिक इबनसऊद ने जब खुतबा (उपदेश) समाप्त किया तो भारतीय भाई तो 'हज्ज कबूल' कहते हुए वहाँ से चल पड़े, परन्तु अरब और जावा के मुसलमान तो 'हज्ज कबूल' कहना भूल गये और चुपचाप उठ कर चल दिये। वाह भई वाह ! इतनी बड़ी भूल खेद यह है कि भारतवासियों ने भी उन्हें स्मरण न कराया। यदि भारतवर्ष में किसी से अनर्थ हो जाता तो मौलवी लोग इसके विरुद्ध कुफ्र से कम का फतवा न देते।

खुतबा पढ़े जाने के उपराँत लोग जबल अरफात में एक मिनट भी ठहरना अच्छा नहीं समझते। जहाँ खुतबा समाप्त हुआ कि ये शाम को 'मुजदलफा' से होते हुए 'मिना' को लौट जाते हैं। हज के दूसरे दिन मिना में इनकी ईद का दिन होता है। मिना एक बड़ा नगर बना हुआ

है। हज के दिनों में तो यहाँ के मकान, दुकान आदि अच्छी तरह भर जाते हैं, परन्तु इसके पश्चात् वह साल भर सुनसान पड़ा रहता है।

मिना के बाजार में लगभग पाँच फुट ऊंची और तीन फुट चौड़ी तीन दीवारें खड़ी कर रखी हैं और एक लगभग एक फरलाँग लम्बी होगी। इन तीनों दीवारों को शैतान कहते हैं। इससे यह प्रयोजन है कि मिना में तीन शैतान हैं। पहली दीवार का नाम जुमरा तल ऊला अर्थात् बड़ा शैतान है। दूसरे का नाम जुमरा तल बुस्ती अर्थात् बीचला शैतान है और तीसरे का नाम जुमरा तल उखरा अर्थात् अन्तिम शैतान है। पहले दिन सवेरे ही प्रत्येक हाजी बड़े शैतान को सात कंकड़ियाँ मारता है और इसके पश्चात् कुर्बानी (बलि) चढ़ाता है। दीवार के भेष में शैतान का नाम सुन कर कई बुत परस्ती के विपक्षी चौक पड़े होंगे, परन्तु वास्तविकता छिपाई नहीं जा सकती। सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप में लाना इस्लाम के लिए नहीं है।

हाँ, बड़े शैतान को सात कँकड़ियाँ मारने के पश्चात् कुर्बानी होती है, परन्तु मक्का भारतवर्ष नहीं है जहाँ उनको गायें सस्ती मिल जायें। मक्का में गायें बहुत कम मिलती हैं। हाँ, मक्का से तीन मील दूर पर तायफ एक स्थान हैं जहाँ गायें मिलती हैं, परन्तु इतनी महँगी बिकती हैं कि उन्हें कोई अरबी इस काम के लिए बेचना नहीं चाहता, क्योंकि वह इस बात को अच्छी प्रकार जानता है कि गाय का दूध मक्का में नहीं मिलता, इसलिए दूध देने वाले पशुओं को पालना और बचाना वह अपना धर्म समझता है। मक्का में गायें, इसलिए कम मिलती हैं कि मक्का के आस–पास साठ मील से कम की दूरी पर कहीं घास मिलती नहीं, इसलिए मक्का में, जो गायें हैं उनको लोग प्रायः खजूर ही देते हैं और घास बहुत थोड़ी खिलाते हैं। हज्ज के दिनों में जहाँ कुर्बानी होती है वहाँ भेड़ बकरियाँ ही दिखाई देती हैं, क्योंकि मक्का में केवल सनाय का पौधा ही उत्पन्न होता है, जिसे खाकर यह भेड़–बकरियाँ पलती हैं। सनाय के पौधे को खाने से जुलाब लग जाता है। यदि किसी को जुलाब देना हो तो सनाय को ही दिया जाता है। फलतः, जो हाजी बकरियों की कुर्बानी कर पेट भर के उनका माँस खा लेता है, उसका पेट तो ऐसा चलता है कि वह सीधा बहिश्त को चला जाता है अथवा यदि बहिश्त नहीं पहुँचता तो उसे दूर ही से बहिश्त दिखाई दे जाता है। कुछ दिनों तक उसका पेट चलता रहता है, जिससे

वह अधमरा हो जाता है। मक्का और जिद्दा में, जो सरकारी अस्पताल बने हुए हैं उन सबके डाक्टर हज्ज के दिनों में मिना में बुला लिये जाते हैं और यहाँ तीन दिन तक अस्पताल रहता है क्योंकि यही तीन दिन कुर्बानी के होते हैं। मैंने मिना के अस्पताल में देखा कि यहाँ अस्सी मनुष्य रोज मरते हैं। मिना पहाड़ी नगर है, कब्रें सुविधा से नहीं खुद सकती, इसलिए साधारण मनुष्यों के लिए या जिनका कोई वारिस नहीं होता एक बड़ा गड्ढा खोद लिया जाता है और पाँच-पाँच को एक ही स्थान में दफन किया जाता है। इबनसऊद की ओर से कई मनुष्य केवल इसी कार्य के लिए रखे हुए हैं कि वह मृत देहों को विधिपूर्वक पृथ्वी में स्थान दिलवायें। प्रायः स्थान न होने के कारण पिछले मुर्द्रों की कब्रें खोद कर उनमें नई लाशें डाल दी जाती हैं।

मैंने देखा उस समय जब कि एक शव अस्पताल से दफनाने के लिए बाहर लाया जा रहा था तो खबर आई कि जावा का एक लड़का भी मर गया है। अलग उठाने का प्रबंध न होने के कारण उसके शव को भी पहले शव की चारपाई पर डाल कर उठा लिया। लड़के का पिता रो-रो कर कहता था कि लड़के के लिए अलग चारपाई मँगाई जावे, परन्तु वहाँ कौन सुनता है ? अस्पताल तो लाशों से भर जाता है। इधर नये बीमारों को लाने के लिए भी तो स्थान चाहिये। उस समय, जो दृश्य सामने होता है उसे विचार में लाया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं कि सब शवों को अस्पताल वाले ही दफन करें, जो लोग अपने व्यय से अलग दफन करना चाहें, उन्हें इसका अधिकार है।

मैंने जब देखा कि कुर्बानी का माँस खाने से ही इतनी मृत्युएं होती हैं तो जलालातलमलिक इबनसऊद का ध्यान इस ओर दिलाया और निवदेन किया कि कोई उपाय आपको ऐसा करना चाहिये, जिससे यह लोग मृत्यु के मुख से बचाये जा सकें। उन्होंने उत्तर किया कि इसका केवल एक ही उपाय है कि इन लोगों को कुर्बानी का माँस न खाने दिया जाये। उन्होंने ऐसा ही किया। अपनी सेना के कुछ मनुष्य कुर्बानी के स्थानों पर खड़े कर दिये और उनको आज्ञा दे दी कि जब किसी भेड़-बकरी की कुर्बानी हो चुके तो उसका माँस बाहर न जाने दिया जाये। इस माँस को भूमि में एक गड्ढा खोदकर दबा दिया जाता था। इतना होने पर भी कई भाई कुर्बानी का मांस आँख बचाकर बाहर

निकाल ले जाते थे और अकाल मृत्यु का ग्रास बनते थे। परमात्मा इन लोगों को बुद्धि दे और सन्मार्ग दिखाये। सुलतान इबनसऊद ने मुझे आश्वासन दिलाया था कि इसी प्रकार प्रत्येक हज के अवसर पर कुर्बानी का मांस खाने पर रोक लगाई जाएगी और इसके लिए उनहोंने लिखित आज्ञा भी निकाल दी। इस आज्ञा का हाजियों के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनता भी बहुत संतुष्ट हुई।

हाँ, यह सब फल बड़े शैतान को कँकड़ियाँ मारने का हुआ। दूसरे दिन तीनों शैतानों को सात–सात कँकड़ियाँ गिन कर मारी जाती हैं और फिर कुर्बानी होती है। तीसरे दिन भी यहाँ सात–सात कँकड़ियाँ तीनों शैतानों को मारी जाती हैं और इसके पश्चात् फिर कुर्बानी। तीसरे दिन संध्या होने तक मक्का पहुँच जाते हैं और सात बार बैतेल्लाह अर्थात् अल्लाह मियाँ के घर का तवाफ (परिक्रमा) करके और सात बार बेतल्लाह सफावल लमरवा में सात दौड़ें लगाकर नाई से सिर मुँडवा कर एहराम उतार देते हैं और अपने–अपने कपड़े पहन लेते हैं। बस हज्ज समाप्त हो जाता है।

परन्तु मक्का नगर की ओर अभी आपका फिर ध्यान दिलाता हूं। यहाँ एक कब्रिस्तान है, जिसको जन्नतुल्माले कहते हैं, जिसमें मुसलमान बुजुर्गों की कब्रें हैं। वह बड़ा सौभाग्यशाली समझा जाता है, जो कि मक्का ही में प्राण छोड़े और जन्नतुल्माले में दफनाया जाये, क्योंकि वह अवश्य बहिश्त में जाता है। हाजी लोग उन कब्रों पर जाकर उनमें सोये हुए पीरों से बड़ी–बड़ी मुरादें माँगते हैं। जलालातलमलिक का ध्यान जब से इस ओर गया है उसने सारे का सारा कब्रिस्तान साफ करा दिया है। ठीक ही किया, न वहाँ कब्र होगी, न कोई ईश्वर को छोड़ कर किसी और की पूजा करेगा। इसके साथ जन्नतुलमाले में पहरा भी लगा दिया है, जिससे कोई भूला भटका भी इधर न जा सके, परन्तु सिदक (विश्वास) रखने वाले अब भी उधर जाते हैं और भीतर जाने का मार्ग न पाकर दूर से ही दुआएँ माँगते हैं। कब्रें नहीं हैं न सही, उनके नीचे पीर तो मौजूद हैं।

मक्का एक बड़ा नगर है। इसमें बहुत से मकान और सरायें बनी हुई हैं, जो वर्ष के अधिकतर भाग में खाली रहती हैं। केवल हज्ज के दिनों में मक्का में चहल–पहल होती है। मक्का के निवासियों का गुजारा हाजियों पर है और वे वर्ष भर का व्यय हाजियों से निकाल लेते

हैं। मक्का में लगभग प्रत्येक नगर की वस्तु मिल जाती हैं। दुकानदार दूर–दूर के देशों से जहाजों के जहाज माल भर के जिद्दा में उतरते हैं और हज्ज से कुछ पहले अपनी दुकानें लगा देते हैं। मक्का में सर्राफों की दुकानें बहुत मिलती हैं। अंग्रेजी रुपया या और किसी देश का रुपया, ये सर्राफ लोग ही लेते है और इसके परिवर्तन में सऊदी सिक्का दे देते हैं, जो कि नजदोहजाज में चढ़ाते हैं। सऊदी सिक्का वा रयाल एक रुपया छह आने का होता है, परन्तु इसका भाव समय–समय पर बदलता रहता है। रयाल पर अब्दुल अजीज इबनसऊद मलिक नजदोहजाज लिखा रहता है। रयाल के अतिरिक्त निरफ (आधा) रयाल, राब्बा (चौथाई) रयाल, कुरश, निरफ कुरश और हलेला आदि नामों के सिक्के चलते हैं। हलेला को सऊदी पैसा और कुरश को सऊदी आना समझिये। एक रयाल के बाईस कुरश होते हैं।

मक्का में, जो साग भाजी मिलती है वह प्रायः तायफ और लय्या की वादी (घाटी) से आती है, जो कि मक्का से तीन दिन की यात्रा है। सब प्रकार के फल भी मक्का में जिद्दा से आ जाते हैं। पानी की दुकान खोलनी भी अरबों का एक अच्छा पेशा है। जिद्दा, जो कि यहाँ से दो दिन का मार्ग है वहाँ से लेकर मक्का तक मार्ग में पानी ही की दुकानें मिलती हैं, जिन पर एक गिलास पानी दो पैसा सऊदी में मिलता है और एक टीन पानी का चार कुरश (चार आने) में। पानी से दूसरे नंबर पर चाय की दुकानें होती हैं। मक्का में भारतीय मुसलमानों की भी बहुत दुकानें हैं।

हाजियों में भारत वर्ष के मुसलमान सबसे अधिक और दूसरे नंबर पर जावा के लोग होते हैं। शेष देशों के मनुष्य तो कम गिनती में होते हैं। अरबों के लिए तो मक्का बहुत ही समीप है, इसलिए वह बहुत कम दिखाई देते हैं। इरानी और तुर्की लोग हज्ज की आवश्यकता ही नहीं समझते। यदि कोई आता है तो रुपया इकट्ठा करने के लिये।

जावा वालों से मैंने पूछा कि आपके यहाँ से बहुत छोटी वयस के लड़के हज्ज के लिए क्यों आते हैं ? तो उत्तर मिला कि जावा में ऐसी प्रथा है कि प्रत्येक व्यक्ति को हज्ज करना ही नहीं पड़ता है चाहे वह धनवान हो या निर्धन, जो हज्ज नहीं करता उसके साथ कोई लड़के–लड़की का विवाह नहीं करता। इस कारण जावा के लोग बहुत संख्या में आते हैं और गिनती में भारतवर्ष से पीछे नहीं रहते। जावा के बहुत

से लोगों से मेरी बातचीत हुई और उनसे पता चला कि बहुत से निर्धन हज्ज के लिए अपना घर बार तक बेच डालते हैं और जब जावा को लौटेंगे तो नये सिरे से घर बनायेंगे, इसलिए जावा के लीडर इस कुप्रथा को हटाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मक्का में बड़े–बड़े बाजार हैं और कई मदरिसे (स्कूल) हैं, जहाँ अरबी और अंग्रेजी पढ़ाई जाती हैं। यहाँ एक मदरिसा अलफलाह है, जिसमें यह दोनों भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। यह मदरिसा बम्बई के एक सेठ, जो कि मुहम्मद अली जैनल के नाम से प्रसिद्ध है, उसने बनवाया है। राज्य की ओर से मदरिसा सऊदिया और मदरिसा मुअहिल्ला हैं। इनके अतिरिक्त भारतीयों की और से भी कई मदरसे खुले हुए हैं। एक का नाम खैरिया और दूसरे का नाम सहूलियता है। ये दोनों निजाम हैदराबाद की ओर से चलते हैं।

मुकदम (पवित्र) स्थान होने से प्रायः भारतवर्ष के निर्धन हाजी वहीं मक्का में ही बस जाते हैं, क्योंकि हैदराबाद और भोपाल की रियासतों से ऐसे लोगों को वजीफे मिलते हैं और हज्ज के अवसर पर तो इनकी चाँदी ही हो जाती हैं। कई एक प्राइवेट मास्टर भी हैं, जो अंग्रेजी पढ़ा कर पेट पालते हैं। एक या दो प्रैस भी हैं, जहाँ उम उलकुरा नाम का पत्र छपता है और वहाँ के सरकारी कागज और सूचनायें भी छपती हैं।

भारतवर्ष के हाजियों को प्रायः अरबी नहीं आती और यही लोग अरब दुकानदारों के सबसे बड़े ग्राहक होते हैं, इसलिए वहाँ के अरब दुकानदारों को भी उर्दू सीखनी पड़ती है।

भारतीय मुसलमान प्रायः शोर मचाया करते हैं कि अरबी सब भाषाओं की जड़ है, परन्तु अरब में जाकर इनका विचार बदल जाता हैं, क्योंकि अरबी दुकानदार भारतीय ग्रहक को देख कर कहता हैं कि ''बेतो'' प्रयोजन है ''बैठो'' ''दो रोती माँकता'' प्रयोजन ''दो रोटी माँगता है।'' पानी को बानी, चावल को शावल, चाय को शाय , छोटा को शोता, पीर को बीर, पंजाब को बँजाब, सियालकोट को सियालकोत, किराची को किराशी, गुल को ग़ुल और गाँधी को गाँदी कहते हैं, जिस नमूने की उर्दू बोलते हैं वैसी ही शुद्ध अंग्रेजी भी बोलते हैं। वट को (बत), डू को (दू) और वाटरपंप को वातरबँब कहते हैं। उनकी अंग्रेजी का उच्चारण सुनने का आनन्द तो वही उठा सकता हैं, जो

उनसे बातचीत क़रता है।

मक्का में, जो जबल सौर और दूसरे जियारत (दर्शन) के स्थान हैं जहाँ कि परमात्मा को भूल कर लोग कब्रों और पीरों–फकीरों से मुरादें माँगते हैं, जलालतलमलिक ने सब बन्द कर दिये हैं और वहाँ के मकान आदि भी गिरा दिये हैं। उसने ऐसा करने से मुसलमानों को केवल परमात्मा की भक्ति का मार्ग दिखाया है।

मक्का में बड़े–बड़े होटल हैं जहाँ खाना मिल सकता है और कई एक डबल रोटी बनाने की भट्टियाँ हैं जहाँ डबल रोटी तैयार की जाती हैं। मक्का में हज्ज के दिनों में दरवेश (फकीर) बहुत आ जाते हैं जिन्हें उन दिनों खाने के लिए बहुत मिलता है, परन्तु जहाँ हज्ज समाप्त हुई और हाजी अपने–अपने घरों को चले कि इनका पेट भी खाली रहना आरम्भ हो जाता है। भूख के मारे फिर ये लोग मदीना भागते हैं। वहाँ भी हज के दिनों में तो हाजियों पर गुजारा होता है, परन्तु फिर वही कष्ट। हज के अतिरिक्त अरब बेचारे को स्वयं ही पेट भी खाना नहीं मिलता तो दरवेश को क्या दें! यदि एक दरवेश सारा दिन भी मदीना में माँगता फिरे तो शाम तक उसे एक मनुष्य का खाना भी नहीं मिल सकता। वहाँ से भाग कर जिद्दा आ जाते हैं, परन्तु जिद्दा यात्रियों का घर नहीं है, इसलिए यहाँ भी वही दशा होती है।

मैं जब मक्का में था तो हज के तीन–चार मास बाद की बात है कि कुछ दरवेश मदीना से मक्का आये। उन्हें मक्का के दरवेशों ने पूछा कि क्या मदीने में खाना मिलता है या नहीं? सबने कहा कि "अलहमदुलिल्लाह" प्रयोजन को खूब खाना मिलता है। वहाँ तो कुछ परवाह ही नहीं है। इतने में उनमें से एक चिल्लाया कि ये सब झूठ बोलते हैं। वहाँ खाना–बाना कुछ नहीं मिलता। भूख के कारण हम मदीना छोड़कर आ रहे हैं। इस पर कुछ दरवेशों ने उसे डाँट बताई, क्योंकि ऐसा कहने से हरमैन शरफैन की प्रतिष्ठा कम होती है। अब तो सब दरवेश एक–दूसरे के मुंह की ओर देखते थे। कोई कहने लगा कि जब हम हिन्दुस्तान में थे तो हर रोज रोटियाँ लँगर (लंगोट) में बाँधते थे। हमारे जैसे बीस–बीस दरवेश नित्य खाना खाते थे। मैं भी खड़ा कौतुक देख रहा था। यह सुनकर पास आया और उनसे कहा–

मेरे मौला बुलालो मदीने मुझे
गमें हिजरत न देगा जीने मुझे।

भाई भागते क्यों हो ? यहाँ हरम शरीफ में नमाज़ पढ़ने का, जो लाख गुना सवाब (पुण्य) होता है उसे छोड़कर हिन्दुस्तान में क्या जा करोगे ? वह कहने लगे, अलहमदुल्लिाह, हज्ज कर लिया, जियारत भी कर ली है। बस अब यहाँ क्या है ? मैंने कहा कि मक्का में मिश्र की सरकार की ओर से रोटी बाँटने की एक जगह है, जहाँ सवेरे चावल का गरम पानी और आध पाव भर की एक डबल रोटी हरएक दरवेश को मिलती है, जो कि सुबह के नाश्ते के लिए काफी होती है। उसे खाओ और दिन-रात मक्का के हरम शरीफ में पड़े रहो। वह बोला कि सुबह के नाश्ते से कैसे काम चल सकता है ? वही बात हुई कि किसी ने गुरुजी से कहा था कि **''गुरुजी, चेले बहुत हो गये हैं, आप कैसे इन सबको अपने पास रखेंगे ? '' गुरु जी बोले '' भूख के मारे सब भाग जायेंगे।''**

अंग्रेजी पढ़ाने के हिन्दुस्तानी मास्टर मक्का में बहुत हैं, जो प्राइवेट तौर पर अंग्रेजी सिखाते हैं। कुछ हिन्दुस्तानी भाइयों ने इनको अंग्रेजी पढ़ाने से रोकना चाहा, परन्तु **'राम नाम जपना पराया माल अपना'** वाली बात है। प्रचार चाहे किसी का हो इनका तो पेट भरना चाहिये।

मुझे एक बार मक्का में जलालातलमलिक इबनसऊद की ओर से एक सौ रयाल खर्च के लिए मिले थे। मैंने वह सब रुपया वहाँ के दरवेशों और विद्यार्थियों में बाँट दिया था। इससे कई भारतीय सज्जन, जो कि मक्का में दुकानदारी करते हैं, मेरे मित्र और सहायक हो गये। समय-समय पर, जो रुपया मुझे इबनसऊद की ओर से मिला है, उसे मैंने अपने भाइयों की सेवा में और हिज बुल्लाह की पुस्तकें बाँटने में लगाया है। हिजबुल्लाह का उपदेश ही यह है कि सारे संसार को एक खुदा ने बनाया है। खुदा तो एक है, परन्तु लोगों ने उल्टा समझ कर उसके भेद बना लिये हैं। मेरा यह सिद्धान्त हैं कि सारे संसार की भलाई करनी चाहिये, न कि केवल अपनी जाति और देश की। सब विद्वानों को भी ऐसा ही करना चाहिए और सबकी भलाई में अपनी भलाई समझना चाहिए।

मक्का में डाकखाना भी हैं। टिकटों पर जलालातलमलिक अब्दुल अजीज इबनसऊद हकूमतलनजदो हजाज लिखा होता है। भारतवर्ष और दूसरे देशों को डाक एवं मनीआर्डर आ-जा सकते हैं। सारे नजदोहजाज में मक्का, मदीना, जिद्दा, तायफ इन चार स्थानों पर

डाकखाने खुले हुए हैं और तुर्कों के समय का टेलीफोन भी इन्हीं चार में हैं।

हज्ज समाप्त होते ही हाजी लोग मदीना जाने की तैयारी करते हैं क्योंकि वहाँ पर हजरत मुहम्मद साहब का रोजा (मज़ार) है। मदीना जाने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग फातमा की वादी से लेकर राविग तक जाता है। इस मार्ग में पानी नहीं मिलता है, दूसरा मार्ग मक्का से जिद्दा को जाता है और वहाँ से धबान तोल में से होकर राबिग जाता है। जिद्दा से ये दोनों मार्ग एक हो जाता है और फिर मदीना तक एक ही मार्ग चला जाता है।

मक्का से मदीना बारह मँजिल है, अर्थात् पैदल या काफले के साथ चलने वालों के लिए बारह दिन का मार्ग है, परन्तु वैदल जाना आवश्यक नहीं है, क्योंकि मक्का से मदीना तक मोटरें चलती हैं। ये मोटरें दो ही दिन में मदीना पहुँचा देती हैं। अभी तक मोटरें चलने के लिए विशेष सड़कें नहीं हैं, परन्तु बन रही हैं।

मदीने जाने का मार्ग पैदल चलने वालों के लिए हज्ज से एक मास पहले और एक मास पश्चात् तक बंद रहता है। अर्थात् हज्ज का एक मास भी मिलाकर तीन मास तक इस भाग पर पैदल नहीं चल सकते। मोटर या ऊँट पर ही जा सकते हैं। मोटर का किराया मक्का से मदीना और मदीना से मक्का या जिद्दा तक बारह पौंड हैं, जिसमे से छह पौंड सरकारी टैक्स है और शेष छह पौंड मोटर का भाड़ा है। ऊँट से जाने पर किराया और टैक्स मिलाकर कुछ छः पौंड देने पड़ते हैं जिनमें से तीन पौंड सरकार के और तीन पौंड ऊँट वाले के होते हैं।

जिद्दा से लेकर मदीना तक तुर्की समय से लगा हुआ टेलीफोन है, जो केवल सरकारी प्रयोग में आता है। मार्ग में बहुत से थाने बने हुए हैं और हर थाने में टेलीफोन है। प्रमाणतः मक्का से मँजिल ऊला अर्थात् पहली मँजिल पर एक थाना है, उसमें टैलीफोन भी है। थाने के पास ही एक छोटा सा गाँव भी बसा हुआ है।

मक्का में, अपितु सारे अरब में मैंने एक बात विशेष प्रकार से नोट की। वह यह कि अरब लोग, जो कि छोटे-छोटे गांवों में बसे हुए हैं, अपने मकान सदा पहाड़ों पर बनाते हैं। कभी-कभी इनके स्थान नीचे पृथ्वी पर अथवा घाटी में नहीं मिलते। इसका कारण बद्दू लोगों के आक्रमण हैं, जो कि इन ग्रामीणों पर आये दिन हुआ करते हैं, परन्तु

अब जहाँ–जहाँ जलालातुलमलिक इबनसऊद का शासन है, वहाँ पूर्ण रूप से शाँति है। इधर की शाँति का प्रभाव पास–पड़ोस के इलाकों पर भी पड़ा है, जैसे यमन, जो कि हजाज के समीप है। अब वहाँ के बद्दू भी लूट मार नहीं कर सकते। नजनोहजाज में शाँति स्थापित होने से वहाँ के बादशाह इमाम यहिया ने भी अब बद्दुओं को वश में कर लिया है।

मक्का से मदीना की यात्रा में, जो थाने मार्ग में आते है उनके नाम क्रमशः ये हैं—मंजिल ऊला, मंजिल सानी, जिद्दा, दहबान, तोल, राबिरा, मसाजिद, बीर दरवेश, बीर अली, मदीना। ये सब बड़े–बडे थाने हैं और इनमें तुर्की समय से टैलीफोन लगे हुए हैं।

मक्का से जबल तायफ को प्रस्थान

मैं मक्का में केवल पच्चीस दिन ठहरा। यहाँ बड़ी गरमी पड़ रही थी। इसी समय जलालातलमलिक इबनसऊद जबल (पहाड़) तायफ को जा रहे थे। उनके साथ मोटर में मैं भी तायफ पहुँच गया।

मक्का से तायफ केवल तीन दिन का पैदल मार्ग है। मोटर कार के लिए एक नया मार्ग भी बना हुआ है, जिससे मोटरें पाँच ही घंटे में पहुँच जाती हैं। तयाफ एक ठंडा स्थान है, जैसे हमारे देश में शिमला और कश्मीर आदि। बड़े–बड़े धनवान् गर्मियों में यहाँ चले आते हैं। जब मक्का में घाम के मारे ठहरना कठिन हो जाता है तो सुल्तान इबनसऊद भी यहाँ आ जाते हैं।

यहाँ सब्जी तरकारी और फल अधिक होता है। अँगूर, अनार इत्यादि जितने फल मक्का में प्राप्त होते हैं, वे सब यहीं उत्पन्न होते हैं और यहीं से भेजे जाते हैं। तायफ के समीप ही, कोई दो घण्टे की यात्रा पर, लइया की घाटी हैं। यहाँ भी फल खूब होता हैं और मक्का में जाकर बिकता है।

तायफ में एक छोटी सी नहर है, जिसका पानी बहुत शीतल है। इसको जुबेदा कहते हैं। यह नहर कोई दो गज की चौड़ाई में है। नहर के ऊपर ईटों की छत पड़ी हुई है, परन्तु एक–एक फरलाँग की दूरी पर पानी निकालने के लिए एक–एक गज छत को खोला हुआ है। इस नहर में खेतीबाड़ी करने के लिए पानी काफी नहीं है, इसलिए खेतीबाड़ी नहीं होती। पहले इधर बद्दुओं के डर के मारे कोई खेती बाड़ी न कर सकता था, परन्तु जब से जलालातलमलिक इबनसऊद ने लुटेरों को

मार–मार कर और कई प्रकार के दण्ड देकर उन्हें मार्ग पर लाया है और शाँति स्थापित की है, तब से वर्षा होने पर खेतीबाड़ी होने लगी है। अब तो स्वयं बद्दू लोग ही खेती करते हैं।

यहाँ तायफ में एक अरबी की पाठशाला भी है। डाकखाना और तुर्कों के समय का टैलीफोन भी है। लइया समीप होने से वहाँ की हरी तरकारी और फलादि यहाँ की मंडी में आ जाते हैं और इधर मक्का के व्यापारी भी इसे खरीदने के लिए आ जाते हैं, इसलिए फलों की अच्छी बड़ी मंडी है, जहाँ से मक्का के लिए माल ले जाया जाता है। मुसलमानों की यह जियारतगाह (तीर्थ) भी है।

मैं तायफ में कोई एक मास ठहरा और प्रचार करता रहा। पश्चात् जलालातलमलिक से विदा होकर जबल असीर की ओर, जो उनके इलाके की सीमा पर है, पैदल चल दिया। मार्ग में वादिये लय्याबिलाद बनी मालिक व बिलाद बनी तासिर और बिलाद गामिदः में पहुँच गया।

बिलाद गामिदः में एक गाँव, जिसका नाम करया रगादान है, वहाँ तक मैं पहुँचा। वहाँ का अमीर (डिप्टी कमिश्नर) हाशिम है, जो कि अति प्रसन्न वदन और न्याययुक्त शासक है। वह भी मेरे हिज बुल्लाह धर्म का सदस्य हो गया। इसी प्रकार वादिये लय्या से लेकर करया रगदान तक के सब अमीर (डिप्टी कमिश्नर) और अन्य कई महानुभाव मेरे हिज बुल्लाह के अनुयायी हो गये।

यहाँ जबल असीर समीप था और जबल असीर से इमाम यमन की राजधानी प्रारम्भ होती है। वहाँ के वृतान्त के लिए मैंने सातवाँ परिच्छेद अलग रख छोड़ा है, इसलिए यहाँ कुछ न लिखूँगा।

तायफ से बिलाद गामिद, करया, रगदान तक पैदल चलता हुआ बाईस दिन में पहुँचा। यह सारा लगभग पहाड़ी इलाका है। मार्ग इतना कठिन और खराब है कि पहाड़ों की उतराई–चढ़ाई में मनुष्य अधमरा हो जाता है, परन्तु अरब लोग सब स्थानों में बसे हुए हैं। यह लोग इन पहाड़ों की घाटियों में खेतीबाड़ी करते हैं और बद्दुओं के डर के मारे (जो अभी उनके हृदय से नहीं निकला) पहाड़ों पर अपने ग्राम बसाते हैं।

यहाँ के लोग अच्छी प्रकृति के हैं। मैंने उनकी सराहनीय प्रथा देखी कि वे अपने रसोई गृहों को गाय के गोबर से लीपते हैं। प्रायः

लोग अपने शिरों पर गाय के खुर के बराबर शिखा (चोटी) भी रखते हैं। मैंने उसका कारण जानना चाहा तो मालूम हुआ कि यह सब अरब किसी समय में हिन्दू (आर्य) थे, जो कि धर्मच्युत हो गये थे। इधर भारतवर्ष से कई शताब्दियों से कोई उपदेशक उनमें धर्म प्रचार के लिए न गया था, क्योंकि पौराणिकों ने यह व्यवस्था दे दी थी कि समुद्र पार करने से धर्म पतित हो जाता है, इसलिए ये लोग अपना धर्म भूल कर मुसलमान हो गये थे। ऐसी ही दशा यमन में दिखाई दी, जिसका वर्णन यमन का वृत्तान्त में करूँगा।

मैंने उन लोगों में आर्य धर्म (हिजबुल्लाह) का प्रचार किया। ये अरब लोग हिजबुल्लाह में खुब सम्मिलित होते थे। इनके गुलाम हिजबुल्लाह के अनुयायी होने के अतिरिक्त ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि यह धर्म सारे विश्व में फैले, जिससे उनका शीघ्र उद्धार हो।

कुरिया, रगदान, बिलाद, गामिद से वापिस मैं इसी मार्ग से प्रचार करता हुआ बाइस दिन में तायफ लौट आया। यहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि जलालातलमिलक इबनसऊद रयाज को लौट गये हैं। यहाँ कुछ दिन प्रचार कर के मैं भी मक्का की ओर चला।

तायफ से केवल एक दिन ही चला था कि जोर की वर्षा होने लगी। वर्षा से बचने के लिए मैंने इधर-उधर देखा, परन्तु कोई आश्रय न मिला। भाग कर एक ऊँचे स्थान पर डाक पहाड़ी गुफा में घुस गया। थोड़ी देर में बहुत सी बकरियाँ भी भागती हुई इसी गुफा में आ घुसी। आकाश में काले बादलों व काली रात्रि के कारण गुफा के अन्दर सख्त अन्धकार था। हाथ को हाथ न सुझाई देता था। सारी रात मूसलाधार वर्षा होती रही। लकड़ियाँ भी गीली हो गई थी, इसलिए आग भी न जला सकता था। इस समय मेरे सारे वस्त्र भीग चुके थे। थोड़ी देर में वर्षा का बाढ़ आया, पहाड़ों पर से बहता हुआ पानी दिखाई दिया, जिसकी गर्ज दूर-दूर तक सुनाई देती थी। जब वह बाढ़ का जल मेरे सामने से गुजरा तो उसमें कई प्रकार के पेड़, पत्ते, पत्थर बकरियाँ और भिन्न-भिन्न प्रकार के मरे हुए जीव बहे चले आते थे। सारी रात्रि बीत गई, परन्तु बाढ़ में कोई कमी न आई। प्रातः होने पर वर्षा थमी। सूर्य भगवान् ने दर्शन दिये। कुछ बद्दू अपनी बकरियों की खोज करते हुए आये और गुफा की बकरियों को ले गये।

जब बकरियाँ खोह में से निकल रही थीं तो उनके साथ ही तीन

मनुष्यों की खोपड़ियाँ भी बाहर आ गई। बद्दू लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि प्रत्येक गुफा मनुष्यों की हड्डियों से भरी पड़ी हैं, क्योंकि इससे पहले जब इतनी शाँति न थी तो बद्दू लोग इस ओर से जाने वाले हाजियों को मार कर उनका माल असबाब लूट लेते थे और उनके शव इन खोहों में फैंक देते थे। सच पूछो तो हजाज (मक्का मदीना) की समस्त पृथ्वी हाजियों के लहू से रंगी पड़ी है।

जबल ताइफ से मक्का को वापिसी

ज्यों–त्यों करके मैं मक्का आया। यहाँ मैं तीन मास और दो दिन रहा। यहाँ मुझे पहली बार यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मक्का में कन्याओं की भी सुन्नत (खत्ना) की जाती है। मैंने सारे अरब में घूम कर देखा कि जब कन्या छोटी आयु की होती है तो उसकी सुन्नत कर दी जाती है। इस कार्य में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती है, पुरुष नहीं जा सकते।

भारत वर्ष में हनफी (सुन्नी) मत के अनुयायी बहुत हैं, परन्तु अरब में शाफी मत के लोग बसे हुए हैं। शाफी मत वाले अपनी कन्याओं की सुन्नत करते हैं। हनफी और शाफी दोनों ही सुन्नी कहलाते हैं। कादयानी और शिया लोग सुन्नी नहीं हैं। सुन्नियों में भी शाफियों और हनफियों की धर्म पुस्तकें और प्रथाएँ अलग–अलग हैं।

मेरे पास '**ओ३म्**' का झण्डा था। जब कहीं प्रचार करने के लिए बैठता तो इसे पृथ्वी में गाड़ देता था। इसी प्रकार जब मैं जबलनूर में गया तो वहाँ भी **ओ३म्** का झण्डा साथ था। जन्नतवाले, जो कि मक्का का सबसे अधिक भुतबरिक कब्रिस्तान माना जाता है, जिसके विषय में मैं पहले ही कह आया हूँ और जिसकी अब ईंट से ईंट बज गई है। वहाँ भी **ओ३म्** का झण्डा मेरे साथ था। भारतवर्ष के मुसलमानों को भी यह समझना चाहिये कि '**ओ३म**' ईश्वर का ही नाम है और ईश्वर सब धर्मो का एक है, नाम चाहे कोई हो। कोई 'गॉड कहता है, कोई अल्लाह और कोई परमात्मा। **ओ३म्** उस परमात्मा का नाम है, जिसका शरीक कोई नहीं हैं।

सफावल मरवाह में मैंने भी अन्य हाजियों की तरह सात दौडें लगाई। उस समय यह ओ३म् का झण्डा भी मेरे हाथ में होता था और खूब लहराता था। यह झण्डा जबल अरफात में जहाँ हज्ज होता है, वहाँ भी मैदान में गाड़ा गया था। ऐसे ही मुजदिलफा मिना और बेतल्लाह

अर्थात् खुदा के घर या खानाये काबा में भी यह मेरे साथ गया। खानाये काबा के चारों ओर सात तवाफ (परिक्रमा) भी इस झण्डे ने मेरे साथ किये। यह ओ३म् का झंडा मक्का की गली-गली कूँचे-कूँचे और हर बाजार में लहराता था।

सच पूछो तो वहाँ के अरब लोग बहुत ही अच्छे और समझदार हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ''ओ३म्'' केवल अल्लाह का नाम है। ओ३म् का झंडा उन्हें केवल परमात्मा की भक्ति सिखाता है। यह सिखाता है कि कब्रों से अथवा पीरों, नबियों, वलियों आदि तुच्छ मनुष्यों से मुरादें माँगना छोड़कर केवल उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर से प्रर्थना करो, जो तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। यह ओ३म् का झंडा प्रत्येक व्यक्ति को मुक्ति का सरल साधन सिखाता है। यह सब समझते हुए वे मेरा और मेरे झण्डे का सम्मान करते थे। उनके सम्मान का उत्तर मैं सम्मान से देता था ।

अरब के मुसलमान भारतवर्ष के मुसलमान न थे कि बिना कारण कोलाहल मचाते। भारतवर्ष के भाइयों की बात कहते हुए मुझे सत्यार्थ प्रकाश की एक कथा स्मरण हो आई है, जो इन पर लागू होती है। वह इस प्रकार है कि किसी गुरु के दो चेले थे और वे दोनों बड़े उत्साह और प्रेम से गुरु की सेवा करते थे। प्रायः उनमें सेवा के ऊपर लड़ाई हो जाती थी, इसलिए गुरु जी दोनों को बराबर बाँट कर सेवा के कार्य देते थे। एक दिन गुरु जी को टाँगें दबवानी थी। दोनों शिष्यों को एक एक टाँग दबाने के लिए दे दी। जब वे दोनों सेवा कर रहे थे तो संयोग से गुरु जी ने एक को किसी कार्य के लिए बाहर भेजा और दूसरा उसी प्रकार एक टाँग की मुठ्ठी-चापी करता रहा। थोड़ी देर में गुरु जी ने करवट बदली तो एक टाँग दूसरे के ऊपर आ गई। चेले को दूसरी टांग को अपनी सेवा वाली टाँग पर पड़ते हुए ऐसा क्रोध आया कि उसने डँडा उठाकर गुरु की टाँग पर जड़ दिया। गुरु जी भिन्ना गये और कारण पूछा तो बोला—गुरु जी, जिस टाँग की मैं सेवा करता हूं उस पर दूसरी टाँग क्यों आई ? इतने में दूसरा चेला भी आ गया। उसने देखा कि गुरु जी की, जिस टाँग की वह सेवा कर रहा था, उसमें घाव हो गया है। उसे बहुत क्रोध आया। उसने लाठी लेकर दूसरी टाँग को दनादन पीटना आरम्भ कर दिया था, जिससे गुरु जी चिल्लाये। एक बुद्धिमान् पुरुष पास से जा रहा था। उसने दोनों चेलों को समझाया, जिससे गुरु

जी की जान बची।

मुसलमान भाइयो! जब हम और आप एक ईश्वर या अल्लाह की उपासना करते हैं तो भेद ही क्या है? हाँ, आप कब्रों, पीरों, वलियों से मुरादें माँगते है। आप अल्लाह के साथ उसके बनाए हुए पुरुषों को शरीक कहते हैं। मुँह से तौहीद-तौहीद कहते जाना और वास्तव में अल्लाह का स्थान तुच्छ जीवों को देना, क्या उचित है? क्या खुदा को अपने कार्य करने में किसी पुत्र अथवा मित्र की आवश्यकता है? यदि उसके भी कोई पुत्र अथवा मित्र होता तो उसमें और मनुष्यों में भेद क्या रहा? भाइयो आओ, इस ओ३म् के झंडे के नीचे एकत्रित होओ।, ओ३म् का झण्डा केवल एक परमात्मा की वंदना सिखाता है। वैदिक धर्म की शरण आये बिना आपको अल्लाह लाशरीक (बिना साझेदार) नहीं मिलेगा। हरकहीं उसका शरीक (काम में हाथ बटाने वाला) कोई रसूल, मित्र अथवा इसका पुत्र मिलेगा। विद्वानों को ईश्वर के बारे में ऐसे अशुद्ध विचार हदय से निकाल देने चाहिये। भाइयो, हम तो आपका सुधार और भलाई चाहते है कि आप सत्य मार्ग, जो वैदिक धर्म है, उस पर चलते हुए सुख को प्राप्त हों। यहाँ सँसार में ऐश्वर्य भोगें और आगे मुक्ति (निजात) प्राप्त करें। यह मनुष्य की देह बार-बार नहीं मिलती। इस छोटी सी आयु को अशुद्ध क्रियाओं और झूठे मतों को छोड़ कर वैदिक धर्म की शरण में आकर सफल बनायें।

धन्य हैं वे अरब भाई जिन्होंने हिजबुल्लाह (वैदिक धर्म) के प्रचार में मेरा हाथ बटाया और स्वयं उसके अनुयायी बने। यदि इसी प्रकार अन्य धर्मो के लोग ऐसा अनुकरण और दूसरे धर्मावलम्बियों से प्रेम करना सीखें तो संसार को अतीव लाभ पहुँच सकता है।

मक्का में और सारे अरब में कहीं-कहीं भारतीय मुसलमानों ने वहीं अपना विवाह करके अपने आपको वहीं बसा दिया है, परन्तु यह भारतीय भाई अरबों से अप्रसन्न हैं और उनकी बुराइयाँ किया करते हैं। वे जब अरबों से किसी बात पर झगड़ पड़ते हैं तो प्राय: कहते हैं कि तुम से तो हिन्दू अच्छे हैं।

जो मेरे मुसलमान भाई भारत में अरब के राग अलापा करते हैं, उनकी, जो दशा अरब में होती है, वहाँ के रहने वालों से ही पूछिये। अरब के बड़े-बड़े नगरों में बसे हुए भारतीय वहाँ के अरबों से बेहद दु:खी हैं। बात यह है कि साँप न खाया जा सकता है, न उगला। न

रह सकते हैं, न छोड़ सकते हैं। ये अरब में जाते हैं और बस जाते हैं, परन्तु बाद में ज्ञात होता है कि न अरब हमारा, न तुर्की हमारा, न ईरान हमारा, न अफगानिस्तान हमारा । ये तो केवल दिल बहलाने के ख्याल हैं। अरब में बिरादराने की कुछ सुनवाई नहीं। जैसे इस्लाम में अकल को दखल नहीं ठीक उसी प्रकार बिरादराने वतन का इन देशों में दखल नहीं। इन्हें 'हनूद' और 'हिन्दी' कहा जाता है। तुर्की में जाते हैं तो बुर्का और दाढ़ी को विदा करना पड़ता है। मैं किसी राजनैतिक विवाद में नहीं पड़ना चाहता, परन्तु तुर्की इन बिरादराने वतन को भली प्रकार जानता है। इसी कारण से मौलाना शौकत अली तुर्की में अपनी सूरत तक नहीं दिखाते। यह मौलाना विश्व के मुसलमानों की एक कानफ्रैंस फिलस्तीन बैतुल मुकद्दस में कर रहे थे। इस कान्फ्रैंस में न खिलाफत कमेटी बन सकी और न ही मौलाना साहब खलीफा बन सके। मैंने वहाँ मौलाना को कहा था, कि, जिस तुर्की ने खिलाफत कमेटी तोड़ी है आप वहीं तशरीफ क्यों नहीं ले जाते ? वरना व्यर्थ है यह कहना कि तुर्की हमारा,तुर्की हमारा। तुर्की में बिरादराने वतन की एक नहीं सुनी जाती।

अब थोड़ा वृत्तान्त ईरान का भी सुनिये। वहाँ सब शिया लोग बसे हुए है। बादशाह रजाशाह पहलवी है। ईरान के लोग सिर पर एक विशेष ढँग की टोपी पहनते हैं, जो पहलवी कैप के नाम से प्रसिद्ध है। दाढ़ी का यहाँ भी सफाया हो चुका है। ईरानी लोग शिया हैं और वहाँ के भारतीय मुसलमान प्रायः सुन्नी हैं। साँप और नेवले की सी इनकी मित्रता है। वहाँ भी बिरादराने वतन लाचार हैं। इनकी कोई नहीं सुनता।

ऐसे ही अफगानिस्तान की दशा है। वज़ीरिस्तान के झगड़े से अनुचित लाभ उठाकर मुसलमान झूठ-मूठ फैलाया करते हैं कि पठान हमारे साथ हैं। इसमें कितना सत्य है यह मैं बताता हूं। मैं सीमा प्राँत का निवासी हूँ। सीमा प्रांत में हिन्दू बहुत कम हैं और सब निहत्थे हैं। वज़ीरों के पास हथियार हैं। वे रात को अंग्रेजी इलाके में डाका डाल जाते हैं और माल असबाब लेकर पहाड़ियों में छुप जाते हैं। हिन्दुओं पर सरकार की इतनी रुकावटें लगी हुई हैं कि वे अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हैं। यदि हिन्दुओं को हथियार दे दिये जायें और पठानों पर हमला करने की आज्ञा दे दी जाये, तो हम थोड़े से सरहदी हिन्दू (आर्य) भी उनका खात्मा कर सकते हैं। बिरादराने वतन हमें यह कह

कर डराते हैं कि पठान हमारे साथ हैं। अरब, तुर्की,ईरान,अफगानिस्तान की धमकियाँ दी जाती हैं और हम अपने घरों में बैठे हुए इन बातों की सत्यता पर विश्वास कर लेते हैं। मैं जब इन देशों में गया तो ढोल का पोल खुल गया। देखने में कुछ और ही आया। इन देशों को तो उल्टा यह डर है कि यदि भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया तो हिन्दू अवश्य उन पर आक्रमण करेंगे।

खैर मैं इस वार्ता को यहीं छोड़ता हुआ मक्का से प्रस्थान करता हूं। जबल तायफ से लौट कर इस बार जब मैं मक्का में ठहरा तो वहाँ से हाजी सब जा चुके थे, जो दशा कालेजों की छुट्टी हो जाने पर लाहौर की होती है, वही अब मक्का की थी। जब हाजी लोग मक्का में थे तो हज्ज समाप्त होते ही सबसे पहले जहाज से भारतवर्ष लौटने के लिए एक–दूसरे से विवाद कर रहे थे। बहुत से तो मदीने भी नहीं जाना चाहते थे, क्योंकि वहाँ जाने से बारह पौंड किराया और मत्थे पड़ता था। पौंड का मोल भी मक्का में बीस रुपया होता है। **''मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे''** वाले गीत ये खबर नहीं मक्का में जाकर क्यों भूल गये। सच है—हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और।

मक्का से जिद्दा बंदरगाह को प्रस्थान।

मैं मक्का से चल कर जिद्दा पहुंच गया और यहाँ एक सप्ताह तक ठहरा। जिद्दा एक बड़ी बन्दरगाह है। मक्का को जाने वाले हाजी जहाज से यहीं पर उतरते हैं। यह नगर लाल समुद्र के किनारे बसा हुआ है। मक्का और मदीना के निकट यही बन्दरगाह है, इसलिए वहाँ बिकने वाला सब सामान यहीं उतरता है। यहाँ अंग्रेजी कोंसल, ईरानी कोंसल और मिश्र के कोंसल के अतिरिक्त और देशों के कोंसल भी रहते हैं, जो कि उन देशों की ओर से प्रतिनिधि का कार्य करते हैं।

यहाँ सऊदी सरकार की ओर से एक अस्पताल है। कई सराफे की दुकानें हैं जिनके पास जा कर हाजी लोग अपने देशों के सिक्कों के परिवर्तन में सुल्तान इबनसऊद का सिक्का खरीदते हैं। दो–तीन स्कूल हैं जहाँ अरबी और अंग्रेजी सिखाई जाती है। एक जियारतगाह (तीर्थ) भी है जहाँ कि हव्वा (आदम की स्त्री) की कब्र है। यह कब्र बहुत लम्बी है, परन्तु जलालतलमलिक ने इसे साफ करा दिया है, क्योंकि हाजी लोग वहाँ जाकर इस कब्र से मुरादें माँगते थे। अब वहाँ एक सिपाही खड़ा रहता है, जो यात्रियों को दूर ही से रोक लेता है और

दूर ही से फातिहा (दुआ) पढ़ने को कहता है।

यहाँ पर मैंने देखा कि भारतवर्ष से आये हुए कुछ दर्वेश, जो सँख्या में लगभग पाँच सौ होंगे, सड़कों पर पड़े हुए थे। उनमें से बहुत से बीमार थे। उन्हें माँगने पर पानी भी न मिलता था, क्योंकि यहाँ पानी का मोल दो पैसे का गिलास है। इन गरीबों के पास भारतवर्ष पहुँचने का भाड़ा कहाँ ?, इसलिए जहाज में बैठ नहीं सकते थे। यद्यपि जिद्दा में अंग्रेजी कोंसल है, परन्तु वह भी इन पीड़ितों की कुछ सहायता न कर सकता था। इन लोगों को कोई आशा थी तो उस जहाज की जोकि हज्ज के चार मास पश्चात् बंबई के मुसलमानों की ओर से जिद्दा में आता है और मुफ्त सबको भारतवर्ष पहुँचा देता है।

अफगानिस्तान और बुखारा के निर्धन स्त्री–पुरुष और दर्वेश भी सड़कों पर पड़े हुए थे। इनमें से कई बहुत बीमार थे। इनकी कठिनाई सबसे अधिक थी। भाड़ा और पासपोर्ट न होने से जहाज पर सवार न हो सकते थे। बेचारे सोच रहे थे कि किस प्रकार अपने देशों को लोटें ? मैंने उनको यहाँ से कराची तक का थल मार्ग समझा दिया। लगभग तीन सौ बुखारी और अफगानी स्त्री–पुरुषों का एक काफिला उसी दिन चल पड़ा और दस–ग्यारह मास तक पैदल चलने के पश्चात् कराची पहुँचा। वहाँ से इन लोगों ने मुझे पत्र लिखा था।

मदीना को प्रस्थान

जिद्दा में कुछ दिन प्रचार करने के उपरान्त मैं मदीने की ओर चल दिया। मांर्ग में दहबान, तोल, राबिरा, मसाजीद बीर दरवेश, वीरअली स्थान आये। इन सब स्थानों में रोटी, चाय और ठहरने की दुकाने मिलती हैं। अरब में, जैसे मैं कह आया हूं, पानी का मोल देना पड़ता है। यहाँ पर दो–दो पैसे में एक गिलास मिल रहा था। किसी यात्री अथवा दरवेश को, चाहे वह कितना ही प्यासा क्यों न हो बिना टका खर्चे एक घूंट जल नहीं नसीब हो सकता।

वीरअली से मदीना दिखाई देने लगता है। जिद्दा से मदीना पहुँचने तक मुझे बारह दिन लगे। मदीना के चारों ओर एक बहुत बड़ी फसील (दीवार) है और नगर के चार–पाँच बड़े फाटक हैं।

इस पैदल यात्रा के बाद जब मैं नगर के समीप गया तो यह देख कर अचम्भित हुआ कि एक रेलवे स्टेशन भी है और अभी तक उसमें एक रेलगाड़ी और इंजन विद्यमान हैं, परन्तु यहाँ रेल नहीं चलती थी।

१९१५ ई० तब जब कि अरब में तुर्की का शासन था, दमश्क, शाम, अमान, मआन, शरकी–अलअरदन से होती हुई रेल मदीना तक जाती थी, परन्तु तुर्की के शासन के साथ ही उसका भी अन्त हो गया, परन्तु रेल की सड़क अब तक भी है। मआन से अमान, दमश्क और शाम तक गाड़ी भी चलती है, परन्तु मआन से मदीना तक रेल का सिलसिला नहीं है।

मदीना एक बड़ा नगर है और इसमें बहुत चौड़े–चौड़े बाजार हैं। मक्का से अधिक ठण्डक है। हजरत मुहम्मद का मजार (कब्र) यहाँ पर है। यह एक बड़ी मस्जिद में है, जिसको हरम शरीफ कहते हैं। मक्का के हरम शरीफ से मदीने का हरम शरीफ कुछ छोटा है। इसके चार–पाँच बड़े–बड़े किवाड़ हैं और भीतर एक खुला हुआ मैदान है। अन्दर चारों ओर बरआमदे बने हुए हैं। जहाँ मुहम्मद साहब का मजार बना है उसके पास ही छह मजार और हैं। कुल मिला कर सात कब्रें हैं, जिनमें से एक खाली है। कुरान शरीफ में लिखा है कि हजरत ईसा मरे नहीं थे, बल्कि उनको ईश्वर ने जीवित ही पृथ्वी पर से उठा लिया था और वह फिर पृथ्वी को लौटेंगे। यह खाली कब्र उनके लिये है।

हजरत ईसा के बारे में ईसाई लोगों का विचार यह है कि उन्हें फाँसी दे दी गई थी। फलतः बेतुलमुकद्दस (फिलस्तीन) में ईसाइयों का एक बड़ा भारी गिरजा है, जिसे अरबी में ''कनीसातलकियामा'' कहते हैं। इस गिरजाघर में संसार भर के ईसाई इकट्ठे होते हैं। इसमें हजरत ईसा के भिन्न–भिन्न चित्र हैं, जिनमें से एक में उनको फाँसी पर लटकाया हुआ दिखाया गया है। ये चित्र संसार के सब बड़े–बड़े नगरों में मिलते हैं।

जब गोलमेज कान्फ्रेंस लन्दन से लौटते हुए मौलाना शौकत अली, जाहिद अली, शफी दाऊदी साहब पटना, मौलाना गुलाम रसूल मिहर, सम्पादक ''इनकिलाब'' लाहोर और सर इकबाल फिलीस्तान आये थे, तो मिहर साहब कनीसातल कियामा को देखने के लिए गये थे। संयोग से मैं भी वहाँ पर था। मैंने मिहर साहब का ध्यान मसीह के उस चित्र की ओर दिलाया, जिसमें उनको फाँसी पर लटकाया गया था और पूछा कि यदि ईसा मर चुके है तो मदीना में उनकी कब्र क्यों खाली पड़ी हैं? यह सुन कर वे हँस पड़े और कुछ उत्तर न दे सके।

मदीना में हजरत ईसा की, जो कब्र अभी तक खाली पड़ी है

उसको गुलाम अहमद कादयानी ने मरना चाहा था, इसलिए उसने अपने आपको मसीह मौऊद (लौटा हुआ ईसा) प्रसिद्ध कर दिया, परन्तु गुलाम अहमद साहब ने इतना नहीं सोचा कि पिछले समय के लोग सीधे–साधे होते थे। उनमें, जो चालाक होता था नबी या रसूल बन जाता था। इस नये युग में गुलाम अहमद साहब कादयानी की एक न चली। उल्टा सुन्नी मुसलमान उसके विपक्ष में हो गये और ऐसे बिगड़े कि गुलाम अहमद और इसके अनुयाइयों पर कुफ्र का फतवा लगा दिया गया। यह फतवा इस्लामी शरीयत के अनुसार, मैं समझता हूँ, उचित था। फलतः हजरत ईसा की कब्र अभी तक खाली पड़ी हुई है। देखिये किसके भाग्य में इसमें घुसना लिखा है। कब्र का खाली रहना ठीक नहीं, इसलिये किसी न किसी को उसमें धकेल ही देना चाहिये।

अब आपका ध्यान हजरत मुहम्मद साहब के रोजे (कब्र) की ओर दिलाता हूं, जो कि मदीना में है। इस कब्र रोजे के चारों ओर एक लोहे की जाली लगी हुई है। ऊपर की छत को भली–भाँति सजाया गया है। छत के ऊपर एक हरे रंग का गुम्बद है, जो दूर से ही दिखाई देने लगता है। लोहे की जाली के पास एक सिपाही खड़ा रहता है, जो किसी को जाली से छूने नहीं देता और न चूमने देता है। तुर्कों के समय में दर्शकगण जाली को हाथ लगाते और चूमते थे। उसके सामने खड़े होकर रोया भी करते थे, परन्तु अब हाथ लगाने और चूमने की रोक कर दी गई है। हाँ, रोने का सबको अधिकार है, इसलिए अब भी बहुत से लोग जाली के पास जाकर रोना आरम्भ कर देते हैं। उनका विचार है कि ऐसा करने से हजरत मुहम्मद को उनकी दशा पर तरस आ जाएगा और वे कयामत (प्रलय) के दिन खुदा के सामने उनकी सिफारिश करेंगे। अभी तक मेरे अनुभव में केवल यही बात आई थी कि सरकारी दफ्तरों में सिफारिश चलती है, परन्तु मुसलमान भाइयों से यह नई बात मालूम हुई कि खुदा भी सिफारिश सुनता है। दुःख केवल इस बात का है कि जहाँ किसी जाली को हाथ लगाया कि सिपाही ने ताड़ से हँटर जमाया। वह सबसे अलग खड़ा होने को कहता है। यदि उसकी आँख बचाकर कोई जाली को हाथ लगा दे और उसे इसका ज्ञान हो जाये तो हाथ लगाने वाले को उसी समय थाना दिखा दिया जाता है। ऐसे लोगों के लिए थानेदार प्रत्येक नमाज़ के बाद, जो कि

दिन में पाँच बार होती है, थाने में हाजिर होने के लिए आज्ञा देता है, इसलिए लोग अब अपने आप ही जँगले से दूर खड़े होकर दुआ पढ़ते हैं।

कब्र के पास ही एक किवाड़ है, जिसे बाबे जबराईल कहते हैं। यह एक रोशनदान से बड़ा नहीं है। मुसलमान कहते हैं कि जब खुदा को कुछ कहना होता था तो जबराईल को अपना संदेश दे देते थे। जबराईल यह सन्देश हजरत मुहम्मद साहब को सुना देते थे। इसको लोग नाजिल होना कहते हैं। कम से कम बीस वर्ष तक, समय-समय पर ये आज्ञायें नाजिल होती रहीं। हजरत को, जिस बात की आवश्यकता होती थी, लोगों के सामने वैसी बात रख देते थे, जो कि अब कुरान शरीफ की शकल में है। मालूम होता है आजकल अल्लाह किसी पर वही नाजिल करना भूल गया है। शिक्षित लोगों में यह बातें आजकल नहीं चल सकती।

हरम शरीफ में एक नलका लगा हुआ है, जिसे आबे कौसर या कौसर का पानी कहते हैं। इसमें से, जो पानी निकलता था उसे वहाँ के दर्शक कहते थे कि बहिश्त से पानी आ रहा है। वास्तव में बात यह है कि दूर पहाड़ी पर एक तालाब बना हुआ है, जिसमें से एक नाली द्वारा यह जल यहाँ आता है। जलालातलमलिक इबनसऊद ने वह नलका बन्द कर दिया है, जिससे "आवेकौसर" आना भी बन्द हो गया है।

जब हजरत मुहम्मद साहब का जन्म दिन आता है, जिसे अरबी में "मौलिद अननबी" कहते हैं तो प्रत्येक वर्ष भारतवर्ष के मुसलमान उसे मनाया करते हैं, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि नजदोहजाज में इसकी कोई परवाह नहीं करता। अरब के अन्य बड़े-बड़े नगरों में भी यह दिन नहीं मनाया जाता। कारण यह है कि यद्यपि अरब में "शाफी" लोग अधिक हैं, जो कि सुन्नी हैं, परन्तु वे शरीअत की किताबों से यह साबित करते हैं कि हजरत मुहम्मद का जन्म-दिवस मनाना बिदअत (धर्म के विरुद्ध) है। तुर्कों के समय में हर जुमे की रात्रि को मदीने के हरम शरीफ में मौलूद (जन्मदिन) मनाया जाता था, परन्तु अब जलालातलमलिक इबनसऊद की आज्ञा से यहाँ भी मनाना बन्द हो गया है।

रात्रि के दस बजे हरम शरीफ में ताला लग जाता है और कोई

हाजी अँदर नहीं रह सकता। ताला सवेरे चार बजे खुलता है। मक्का का हरम शरीफ तो रात–दिन खुला रहता है।

मदीना में जन्नतलबकी नाम का एक कब्रिस्तान है, जिसमें हजरत मुहम्मद साहब के मित्रों और शहीदों की कब्रें हैं। उनके साथ ही मुहम्मद साहब की कई एक बीवियों की कब्रें भी हैं। हजरत हमजा साहब का मजार भी, जो कि एक बड़े बुत से मिलता–जुलता था, यहीं था। इनके अतिरिक्त, जो हाजी लोग मदीना में मर जाते थे वे भी कब्रिस्तान में दफनाये जाते थे। ऐसा प्रचलित था कि इस कब्रिस्तान में दफनायें जाने वाले सीधे बहिश्त में जाते हैं। हाजी लोग इस कब्रिस्तान में जाकर मुरादें माँगना अपना सौभाग्य समझते थे। रात–दिन हाजियों का जमघट रहता था और खुदा को छोड़ मजारों की पूजा होती थी, इसलिए जलालातलमलिक इबनसऊद ने वह कब्रिस्तान सारा का सारा तुड़वा दिया है और कब्र हटाकर पृथ्वी एक सी कर दी है। अब कब्रिस्तान के बाहर सिपाही का पहरा लगा हुआ है। वह यात्रियों को अन्दर नहीं जाने देता और दूर ही से दुआ पढ़ने को कहता है। तुर्कों के समय मूर्तिपूजा अत्यधिक होती थी, परन्तु अब ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ के अरब लोग व्यवहार के बहुत अच्छे हैं, परन्तु गुलामों पर वही अत्याचार होता है जैसा सारे अरब देश में मैंने देखा है। मैंने दो मास तक वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार किया। लोगों पर मेरे प्रचार का काफी प्रभाव पड़ा।

मैंने मदीने में एक विशेष बात यह देखी। कि यहाँ प्रायः बहुत से दर्वेश रहते हैं। इनको हज्ज के दिनों में तो कुछ मिल जाता है, परन्तु हज्ज के तीन मास बाद इनका निर्वाह होना भी कठिन हो जाता है, इसलिए इसमें से बहुत से प्रायः अपने स्थान बदलते रहते हैं। दर्वेश मक्का में भी रहते हैं और इनकी भी यही दशा रहती है। दोनों स्थानों के दर्वेश यही समझते हैं कि दूसरे स्थान में अच्छा खाना मिल रहा है। यदि मदीने के दर्वेश मक्का जाते हैं तो वहाँ उनके भाई पूछते हैं कि क्या मदीने में खाना मिलता है? इनमें से कई एक सत्यप्रिय तो साफ कह देते हैं कि वहाँ कुछ नहीं है, परन्तु भारतीय फकीर इनको समझते है कि ऐसा नहीं कहना चाहिये। कौन नहीं जानता कि हज्ज के बाद मक्का और मदीना में खाने को नहीं मिलता, फिर भी ऐसा मुँह से निकालना गुनाह है, क्योंकि इससे मदीने की बदनामी होती है। कहना

चाहिये कि मदीने में हज्ज के बाद भी खाने की कमी नहीं है, अलहम-दुलिल्लाह !

मैं जब बेतुल मुकद्दस पहुंचा था तो वहाँ भी भारतीय दर्वेशों और फकीरों ने, जो कि मक्का में हज्ज करने गये हुए थे और बहुत चिर से वहाँ बसे हुए थे, मुझसे यही प्रश्न किया कि मक्का और मदीना में दर्वेशों को खाना मिलता है या नहीं ? मैंने उत्तर दिया, वही है चाल बेढँगी, जो पहले थी सो अब भी है। इस पर वे सब हंस पड़े और बोले कि हम बिना धन के कभी भूलकर भी मक्का मदीना न जायेंगे।

मैंने यहाँ से मिश्र जाने का संकल्प कर लिया। मिश्र अफ्रीका में गिना जाता है, परन्तु वहाँ की भाषा अरबी है। अरबी की बहुत सी अखबारें और पुस्तकें भी मिश्र से निकलती हैं। वहाँ एक अरबी की यूनिवर्सिटी भी है, जिसे '**जामिया अल अजहर**' कहते हैं। भारतवर्ष के मुसलमान भाई मिश्र के **जामिया अल अजहर** में अरबी भाषा सीखने के लिए जाते हैं।

मिश्र जाने के लिए यहाँ से पैदल के दो मार्ग हैं। एक तो यह है कि मदीना से मआन तक तुर्कों के समय की रेल जाती है, जो बीस दिन की यात्रा है, परन्तु मार्ग में पानी बहुत ही दूर-दूर मिलता है। यदि वर्षा हो चुकी हो तो यह मार्ग अच्छा है। दूसरा मार्ग यम्बा बदंरगाह, जो कि लाल समुद्र के किनारे पर है, वहाँ से जाता है। इसी समुद्र के किनारे-किनारे चल कर अकबा स्वेज तक थल मार्ग मिल जाता है।

मैं मदीना में दो मास तक ठहरा था। अब मक्का, मदीना, जिद्दा, नजदोहजाज का पहनावा भी सुनिये। सिर के ऊपर एक तिकोनी रूमाल, उसके ऊपर तीन रस्सियाँ, एक लम्बा कुर्ता और एक पाजामा, ये अरबों का पहनावा है। कुर्ते के ऊपर हमारे यहाँ के कोट के सदृश एक वस्त्र, जिसे 'अबा' कहते हैं, पहना जाता है। स्त्रियाँ एक लम्बा कुर्ता पहनती है और सिर के ऊपर एक दोपट्टा रखती हैं। इनमें भारतवर्ष की सी बुर्के की प्रथा नहीं है। केवल मुंह पर एक काला सा रूमाल बाँध लेती हैं, जिसमें से आँखें बाहर निकली हुई रहती हैं। भारतवर्ष की मुसलमान स्त्रियों का बुर्का तो सिर से पाँव तक होता है और आँखों के आगे एक विशेष ढंग की जाली होती है, परन्तु सारे अरब में ऐसा लम्बा बुर्का कोई स्त्री नहीं पहनती। अरब स्त्रियों के मुंह पर, जो काला रूमाल होता है आँखें उसमें से साफ बाहर निकल आती है। आखों के

आगे कोई जाली नहीं होती।

मदीने में कुछ पाठशालायें हैं जहाँ अरबी की शिक्षा दी जाती है। मक्का के सदृश यहाँ भी जाविया अल मिस्रिया है, जहाँ कि मिश्र सरकार की ओर से निर्धनों के लिए रोटी मुफ्त बाँटी जाती है। सवेरे चावल का गरम पानी और आधा पाव की डबल रोटी हर एक दर्वेश को मिलती है, जिससे वे सवेरे का ब्यालू करते हैं। शेष दिन के लिए खुदा हाफिज है।

मदीना में नाना प्रकार की खजूरें बिकती हैं और हाजी लोग मदीना से अपने-अपने देशों के लिए खजूर लेकर जाते हैं तथा वहाँ पहुँच कर उसे प्रसाद की तरह ही बाँटते हैं। इसी प्रकार मक्का से लौटते हुए हाजी जमजम का पानी और जिद्दा से पीतल की अंगूठियाँ और तसबीह ले जाते हैं। यह सब वस्तुएँ वे अपने-अपने देशों में पहुँचकर प्रेम से बाँटते हैं। मैंने भी एक तबर्रुक (प्रसाद) एक भारतवर्ष जाने वाले मुसलमान मित्र के हाथ अपने पूज्य आचार्य परमंहस परिव्राजक श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के लिये भेजा था। दुर्भाग्य से वह मित्र बम्बई जाते हुए जहाज में ही समाप्त हो गया और सुना है कि उसका शव समुद्र में ही डाल दिया गया था। अब पता नहीं कि उसका माल असबाब और मेरा तबर्रुक का क्या हुआ?

जब मैं मदीना में था तब भी अपने आचार्य जी से पत्र व्यवहार कर रहा था और उनके आदेशों के अनुसार कार्य कर रहा था। मेरी इन सारी यात्राओं में उन्ही का मस्तिष्क काम कर रहा था । हर बँदरगाह से मैं उन्हें पत्र लिखता था और वहाँ की परिस्थिति का उन्हें ज्ञान करा देता था। केवल पत्र ही नहीं मुझे भारतवर्ष से पुस्तकें भी मिल जाती थीं, जैसे कि एक बार जिद्दा की बँदरगाह पर एक अरब दुकानदार की मार्फत मैंने परोपकारिणी सभा अजमेर से दयानन्द ग्रंथमाला के दोनों भाग मंगवा लिये थे।

भारतवर्ष की बात छोड़कर अब फिर मदीने की सुनिये। यह एक बड़ा नगर है। इसके बाजार भी मक्का के सदृश बड़े-बड़े हैं और हर प्रकार की वस्तु की तिजारत होती है। इतना भेद अवश्य है कि मक्का में कोई साग तरकारी अथवा फल पैदा नहीं होते। घास तक भी नहीं उगती, परन्तु यहाँ हर प्रकार का साग और खजूर के पेड़ बहुतायत से होते हैं। मक्का की तरह यहाँ बहुत से भारतीय मुसलमान बसे हुए हैं।

दुकानदारी आदि व्यवसाय करते है। मक्का के सदृश यहाँ कई सरायें हैं जहाँ हज्ज के दिनों में ऐसी भीड़ होती है कि स्थान मिलना कठिन हो जाता है, परन्तु हज्ज के बाद सब सुनसान हो जाता है।

जिन लोगों ने भारतवर्ष में हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार देखा है, इस बात को सुनकर आश्चर्य करेंगे कि इस्लाम की जन्मभूमि अरब में हिन्दू सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। अरब लोगों का व्यवहार भारत के मुसलमान भाइयों से अच्छा है। हमारे देशवासी भाइयों को उनसे शिक्षा लेनी चाहिये, परन्तु यह तो समझते हैं कि हज्ज कर लिया तो गुनाह खत्म ही हो गये। तौबा कर ली तो बड़े से बड़ा गुनाह भी घुल गया। ऐसी दशा में अच्छी बातों से क्या लाभ ? भारतवर्ष में एक कहानी सुनते थे कि कोई बुढ़िया टोकरी में आम रखे हुए जा रही थी। एक हाजी भी पास से गुजर रहा था। उसने पीछे से तीन–चार आम निकाल लिये। दो तीन पग ही चला होगा कि बुढ़िया ने पीछे से आवाज दी "ओ हाजी, मेरे आम वापिस दे जा।" वह हक्का बक्का होकर वापिस लौटा। आम तो उसने बुढ़िया की टोकरी में धर दिये और बोला, "अम्मा, सच बताओ, तुम्हें यह कैसे ज्ञान हुआ कि मैं हाजी हूँ ?" बुढ़िया ने कहा—"यह काम हाजियों के ही हैं।" जब हाजियों की यह दशा है तो जन–साधारण का तो कहना क्या है ? वैदिक धर्म तो सिखाता है कि जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। पश्चात्ताप से भविष्य सुधर सकता है, परन्तु भूत के किये दुष्कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। यदि हज्ज करने से सारे गुनाह और तौबा कर लेने से शराब पीने का पाप मिट सकता हो तो पाप का डर ही क्या रहा ? किस्सा समाप्त हो गया। रात को मजे से पीली और दिन को तौबा कर ली। मुसलमान के मुसलमान रहे, हाथ से जन्नत न गई।

हाँ, मदीना में मक्का की तरह चाय और कॉफी की दुकानें बहुत हैं। हज्ज में सबसे अधिक काम चलता है तो हज्जामों का, क्योकि मक्का के तवाफ (परिक्रमा) के बाद सभी को इनसे सिर मुँड़वाना पड़ता है।

लाल समुद्र का तट–यमबा, अमलुज,अलवज, दुब्बा। खुरैबा को प्रस्थान

मैं '**ओ३म्**' का झंडा उठाकर कर मदीना से वापिस मसाजीद चला आया। मसाजीद से दो मार्ग निकलते हैं। एक मार्ग तो वापिस

जिद्दा, मक्का आने का है और दूसरा मार्ग यमबा बंदरगाह जाने का है। मैं मसाजीद से यमबा बंदरगाह चार दिन में पहुँचा और एक सप्ताह वहाँ रह कर प्रचार करता रहा।

यह बंदरगाह लाल समुद्र के तट पर है। इसके चारों ओर फसील (दीवार) है। यहाँ जहाज हर पन्द्रहवें दिन आता है। मिश्र फिलस्तीन और शाम के हाजी लोग, जो नहर स्वेज के रास्ते से मक्का मदीना आते हैं, वे जिद्दा उतरने की बजाय यहीं पर उतर जाते हैं।

जिन दिनों में यहाँ पहुँचा था संयोग से बनारस के अठारह जौलाहे भी बाल बच्चों समेत इसी बंदरगाह में आ उतरे। वे लोग बसरा, बगदाद, फिलस्तीन और मिस्त्र से होते हुए स्वेज से जहाज में सवार होकर यहाँ आये थे। एक दिन बाजार में उनकी मुझसे भेंट हो गई और वार्तालाप करता हुआ मैं भी उनके साथ चल पड़ा। जब हम बाजार में आ रहे थे तो हमने एक अरब लड़के को देखा, जिसके सिर पर चोटी थी। मेरे मित्र उस लड़के को देख कर बहुत अचम्भित होकर बोले– "क्या यह लड़का हिन्दू है?" मैंने उन्हें बतलाया कि यहाँ के बद्दुओं का यही रिवाज है। ये सिर पर चोटी रखते हैं। ये नई बात सुन कर उन्होंने कान पर हाथ रख लिया और चोटी के खिलाफ बहुत कुछ बोलते रहे, परन्तु वहाँ कौन सुनता था। ये लोग हिन्दुस्तानी में बात करते थे और वे अरबी के अतिरिक्त कुछ समझते ही न थे।

ये लोग आपस में कानाफूसी भी करते रहे, जिससे मैंने यह समझा कि ये कह रहे हैं कि मैंने ही अरबों में चोटी रखने का प्रचार किया है, परन्तु वे मुझसे कुछ न कह सकते थे। मैं भी इन मित्रों का मन नहीं दुखाना चाहता था, इसलिए उनका ध्यान दूसरी ओर करने के लिए और उन्हें प्रसन्न करने के लिए मैंने एक अरब से अरबी में पूछा कि, "क्या ज़मजम अच्छा है?" उसने उत्तर दिया कि "ज़मजम आदमी तो अच्छा हैं" मैंने कहा—भाई जमजम कोई आदमी नहीं है बल्कि यह तो मक्का का अच्छा एक पवित्र कुआँ है। उसने हैरान होकर उत्तर दिया, जमजम उस समय तो आदमी था, अब कुआँ हो गया हो तो पता नहीं। इस पर हम सब खूब हँसे। वास्तव में उन लोगों को जमजम का पता ही नहीं, जो बद्दू या अरब लोग मक्का के आसपास पड़े हुए हैं, वे तो हज्ज भी नहीं करते।

मैंने थोड़े दिन यहाँ प्रचार किया । यमबा बन्दरगाह पर स्वेज,

मिश्र की ओर से बड़ी–बड़ी नावें आती रहती हैं। मिश्र का हर प्रकार का सामान यहाँ आकर बिकता है। यहाँ अरबी की कई एक पाठशालाएँ हैं, परन्तु साग तरकारी यहाँ भी नहीं उगते। कभी–कभी स्वेज से फल तरकारी आ जाते हैं। लोगों का गुजारा मुख्यतः खजूर पर है और ज्वार, बाजरा एवं चावल प्रायः धनी लोग खाते हैं।

जब मैं यहाँ से चलने को तैयार हुआ तो पहले वहाँ के अल अमीर अर्थात् डिप्टी कमिश्नर से मिलने गया और उससे आज्ञा माँगी। उन्होंने आज्ञा तो दे दी, परन्तु एक फार्म पर हस्ताक्षर करवा लिये, जिसका आशय था कि यदि मार्ग में भूख प्यास या जँगली जन्तुओं के कारण मेरी मृत्यु हो जाये तो नजदोइजाज की सरकार जिम्मेवार न होगी। मैं परमात्मा पर भरोसा रख कर यमबा से चल पड़ा।

मेरी यात्रा का तीसरा दिन था। शाम को, जिस समय में विश्राम की तैयारी कर रहा था तो यकायक भेड़ियों के एक झुण्ड ने मुझे आ घेरा। मैंने झट अपनी जेब से दिया सलाई निकाली। सिर से रूमाल उतार उसमें आग लगाई और उसे एक छोटी सी बेरी के पेड़ पर टाँग दिया। बेरी सूखी थी, उसमें आग लग गई और वह जलने लगी। आग को देखकर सब भेड़िये भाग गये। जब तक बेरी जलती रही मैंने बहुत सी लकड़ियाँ और ऊँटों का सूखा गोबर इकट्ठा कर लिया। अभी और लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहा था कि आग बुझ गई और भेड़िये फिर आ धमके।

मैंने शीघ्रता से फिर आग जलाई, जिससे वे कुछ दूर जा खड़े हुए। अब रात हो चुकी थी। जब जरा आग कम हो जाती थी वे झट मेरे समीप आ जाते थे, परन्तु जब आग अधिक प्रज्वलित होती तो वे दूर भाग जाते थे। मुझे भूख भी लग रही थी, इसलिए अपने थैले में से ससमान निकाल कर चावल पकाये और चाय पी। ईश्वर भक्ति के थोड़े से गीत भी गाये, परन्तु ये सब उपाय करने पर भी नींद आने लगी। आग कम होते ही भेड़िये बार--बार समीप आ जाते थे। मेरे पास बन्दूक और कारतूस थे। उनका प्रयोग कर सकता था, परन्तु कहीं गोली चलाते ही सारा झुण्ड आक्रमण न कर दे, गोली न चलाई। मुझे मालूम था कि केवल आग जला कर ही बनैले जन्तुओं को डराया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

एक बार पेशाब करने के लिए थोड़ी दूर जो गया कि भेड़ियों ने

एक दम झपटा मारा। इतनी कुशल हुई कि मैं झट भाग कर आग के पास पहुँच गया। अब मैंने वहीं बैठ कर पेशाब किया। आधी रात तक तो जागता रहा। जब अधिक जागना असम्भव हो गया तो, जो सबसे बड़ी लकड़ी थी उसे आग में लगा दिया और ईश्वर का नाम लेकर सो गया। सवेरे उठ कर देखा तो एक भी भेड़िया न था।

वहाँ से चलकर चौथे दिन शाम को अमलुज बन्दरगाह पहुँचा। यमबा, अमलुज, अलवजहः, दुब्बा, खुरैबा एक-दूसरे से चार-चार दिन की यात्रा पर हैं, परन्तु मार्ग में कुआँ दो-दो दिन के बाद आता है, जिसे मँजिल कहते हैं। मैं हर बन्दरगाह से चार दिन का खाना अपने साथ ले लेता था, परन्तु मार्ग में बद्दू लोग मिल जाते थे तो उनसे खजूर, दूध, मक्खन भी मिल जाता था। अमलुज में मैंने आठ दिन तक प्रचार किया। यहाँ के अलअमीर से भी मिला और इसके बाद चार दिन की यात्रा करके अलवजहः पहुँच गया। वहाँ के अल अमीर से भी मिला और एक सप्ताह तक प्रचार करता रहा। यहाँ से चार दिन में दुब्बा की बन्दरगाह में पहुँचा और आठ दिन प्रचार करके चार रोज में खुरैबा पहुँच गया।

यहाँ मैंने केवल प्रचार नहीं किया वरन् बहुत से धनवानों से भी मिला। मेरी इच्छा थी कि उनसे मिलकर यहाँ के जितने भी गुलाम पुरुष और स्त्रियाँ हैं, उन सबको स्वतन्त्र कराऊँ। खुरैबा में सुल्तान इबनसऊद का शासन समाप्त हो जाता है। यमबा से खुरैबा तक मार्ग अति कड़ा है। समुद्र के किनारे-किनारे चल पड़ता है। मैंने **'ओ३म्'** के झण्डे को यहाँ गाड़ दिया और सात दिन तक प्रचार करता रहा।

यहाँ से छह दिन की दूरी पर अकबा बन्दरगाह आती है, जो कि शरफी अलअरदन में है। यहाँ का अल अमीर अब्दुल है। अकबा और खुरैबा के बीच में छह दिन का मार्ग है। दोनों राज्यों में खटपट रहने से इस इलाके का प्रबन्ध अति खराब है। शासन भी किसी का नहीं है। इस इलाके में विद्रोही बद्दू लोग एकत्रित हो गये हैं, जो आते-जाते यात्रियों को मार देते हैं और कपड़े तक उतरवा लेते हैं।

मसकत से लेकर मक्का, मदीना, जिद्दा और खुरैबा बन्दरगाह तक बड़े-बड़े नगरों में पक्के मकान होते हैं। छोटे-छोटे ग्रामों में लकड़ी के सायबान होते हैं। जँगल में बद्दू लोग प्रायः खैमा लगा लेते

हैं। खुरैबा पहुँचते ही सुल्तान इबनसऊद की हकूमत समाप्त हो जाती हैं।

यहाँ इस पुस्तक का पहला परिच्छेद मेरे एक वर्ष, छह मास और तेरह दिन की यात्रा के साथ समाप्त होता है। दूसरे परिच्छेद में मिश्र (अफ्रीका) के समचार लिखेंगे।

॥ यह प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥

❑❑

दूसरा परिच्छेद

मिश्र (अफ्रीका)

मैं परमात्मा के भरोसे पर खुरैबा से चल पड़ा। अभी तीन ही दिन हुए थे कि पानी समाप्त हो गया और यहाँ कोई विशेष मार्ग न होने से कुआँ न मिला। आज दोपहर का समय था, मैं एक पेड़ के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गया। कुछ देर वेद मंत्र पढ़ता रहा और कई एक भजन भी गाये। अब प्यास ने बहुत सताया। तीन घंटे चलने के बाद कुछ दूर पर बकरियाँ चरती हुई दिखाई दी, परन्तु उनके साथ आदमी कोई भी न था, इसलिए मैं फिर चल पड़ा। थोड़ी दूर ही चला था कि धीरे से कान में शब्द आया, जिसका अर्थ था—''तुम कौन हो ?'' मैंने बहुत ध्यान से देखा, परन्तु बोलने वाला अब भी दिखाई न दिया। पहाड़ी इलाका था और छोटी-छोटी चट्टानें थी। मैं थोड़ी दूर चला और प्यास के मारे बैठ गया। इतने में सामने वाली चट्टान से इस तरह का शब्द आया जैसे कोई बन्दूक में कारतूस डाल रहा हो। मैं सावधान हो गया, क्योंकि मुझे पहले से मालूम था कि इस इलाके में बद्दू लोग यात्रियों पर डाका डाला करते हैं। मेरे पास जो बँदूक थी, उसे भर लिया और शत्रु को देखने लगा। इतने में एक बद्दू ने जो कि एक चट्टान के पीछे छिपा बैठा था मुझ पर गोली चला दी। मैं चौकन्ना हो चुका था, इसलिए गोली आने से पहले ही लेट गया था। गोली मेरे ऊपर से गुजर गई । गोली चला चुकने बाद यह देखने के लिए कि मैं मर गया था या नहीं, मेरे आक्रमणकारी ने चट्टान के पीछे से अपना सिर निकाला। उसका सिर उठाना था कि मैंने भी वार कर दिया। गोली सर्राती हुई गई, परन्तु ठीक न बैठी। फिर भी उसके सिर की खाल तो उड़ा ही ले गई, जिससे वह बेहोश होकर चट्टान के पीछे गिर गया। इतने में उसकी मोटी काली सी माँ केवल एक धोती बाँधे हुए और एक छोटे से बच्चे को कंधे पर रखे हुए चीखती हुई आई। दूर से संधि की झंडी दिखाई, जिससे मैं उठा और घायल बद्दू के समीप गया। वह छिपा बैठा था। उसने लज्जित होकर कहा कि मैंने आपको पहचाना न था कि आप हिन्दी हैं। मैंने आपको अरब समझ कर निशाना मारा था।

उसकी माँ भी आ गई थी। दो चार मिनट तो हम वहीं बैठे रहे, फिर उठकर जहाँ मेरा सामान पड़ा था वहाँ आ गये।

मैंने उनसे कुएँ का पता पूछा। इस पर वह बद्दू उठा और मेरी चायदानी बकरियों के दूध से भर लाया। दूध पीकर मैं वहाँ से चल पड़ा। चलते समय उसकी माँ ने मेरे थैले की तलाशी लेनी शुरू कर दी। एक कैंची उसे पसन्द आई, मैंने दूध के बदले उसे कैंची दे दी।

अब सूरज छिपने लगा और मैंने उनसे विदा चाही। उन्होंने कहा अभी तो कुछ दिन ठहरो, परन्तु मैं चल दिया। उन्होंने मुझे साथ के लिए बहुत सी खजूरें लाकर दी, जिन्हें मैंने अपने थैले में डाल दिया।

रात्रि हो गई थी। बद्दू ने मुझे पानी के स्रोत का पता भी बतलाया था, परन्तु ठीक सड़क न होने से अँधेरे में मुझे उसका कहीं पता न चला और भूल कर मैं दूर जा निकला। यात्रा की थकावट से भूख खूब लग रही थी। मैंने खूब पेट भर कर खजूर खा ली और यह सोचा कि कल सवेरे तो पानी ढूँढ़ ही लूंगा। जब मैं सो गया तो आधी रात के समय जोर की प्यास लगी। ज्यों-ज्यों करके रात गुजारी और सवेरे उठ कर पानी की खोज में चल दिया।

यहाँ से अकबा तीन दिन की यात्रा थी। दोपहर तक पानी का कहीं नाम निशान न मिला। न कोई विशेष मार्ग ही था। पर हाँ, वह कमी तो मैंने चुम्बक की सुई से पूरी करली और उसकी सहायता से अकबा की दिशा में चलता रहा। दोपहर को मैंने एक बड़ी ऊँची पहाड़ी पर चढ़ कर इधर-उधर दृष्टि डाली, परन्तु पानी का कोई चिह्न दिखाई न दिया। हाँ, बहुत ध्यान से देखने पर लाल समुद्र का किनारा कुछ दूर पर दिखाई दिया। पसीने, गर्मी और प्यास से मेरी दशा बहुत खरा हो रही थी। स्नान करने के लिए मैं समुद्र की ओर चल दिया।

जब मैं समुद्र के किनारे पहुँचा तो सूर्य भगवान् छिपना चाहते थे। मैंने भी उनके साथ ही जल में डुबकी लगाई। नहाने से शरीर में ठंडक आई और प्यास को कुछ शांति मिली, परन्तु समुद्र का पानी पी न सकता था। थोड़ा सा और चलकर सो गया, परन्तु प्यास के मारे नींद किसको आती है ? करवटें बदलते-बदलते एक बार आँख लग ही गई। स्वप्न में लाहौर के लाइम ब्यूस और लेमोनेड के ठंडे गिलास दिखाई देने लगे। सवेरे उठा और तीन-चार घण्टे चला। दोपहर का समय समुद्र के जल में ही बिताया। शाम को ठण्ड होते ही फिर चल

पड़ा, इसी प्रकार उस दिन दस–बारह बार नहाया और सारी रात चलता रहा। अंधेरा होने से रात को मार्ग का कुछ पता न लगता था। केवल एक समुद्र का किनारा मैंने पकड़ा हुआ था, जिस पर मैं चल रहा था। जोर–जोर से चिल्लाता था कि कोई मेरी आवाज को सुन ले। आधी रात तक खूब आवाजें दी, परन्तु कहीं से उत्तर न मिला। सवेरे चार बजे कुछ बद्दू के किनारे ही पर खड़े हुए मिल गये। वहाँ जाकर पानी माँगा। संयोग से उनका पानी भी समाप्त हो चुका था। वहाँ से कुआँ तीन घंटे की दूरी पर था। एक बद्दू मुझे अपने साथ कुएँ पर ले गया। वहाँ मैंने पानी पिया और ईश्वर का धन्यवाद किया कि जान बची।

दो दिन की प्यास ने मुझे इतना थका दिया था कि यहाँ से मैंने सोचा कि अब किसी पहाड़ की गुफा में बैठकर ईश्वर की भक्ति करूंगा। परन्तु मैंने अपने पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज से प्रण किया था यदि जीवित रहा तो सारे अरब में वैदिक धर्म का प्रचार करके एक बार भारतवर्ष अवश्य आऊँगा। वैदिक धर्म का प्रचार करना भी तो परमात्मा की भक्ति है और अरब जैसे देश में इसका सबसे प्रथम प्रचार करना कितना बड़ा महत्त्व रखता था। गुरु देव की आज्ञा पालन का विचार फिर मुझे ले उठा और मैं वहाँ से पूर्ववत् चल दिया।

वहाँ से छह घंटा पैदल चलने के बाद में अकबा (शरकी अलअरदन) पहुँचा। यह भी एक बन्दरगाह है। यहाँ पर लाल समुद्र समाप्त हो जाता है। तीन दिन की दूरी पर स्वेज बन्दरगाह है। वहाँ से एक नहर निकाल कर पोर्ट सईद, जो कि बहर मुत्वस्तअल अबयज (बुहेरा रूम) पर है, उसमें मिलाई गई है। अकबा में हर पन्द्रहवें दिन जहाज आता है।

जब मैं यहाँ प्रचार कर रहा था तो एक जहाज का कप्तान अकबा के थाना में आया और अंग्रेजी में उससे बीस ऊँटों का प्रबन्ध करने को कहा। उसकी पार्टी ऊँटों पर सवार होकर अकबा की सैर करना चाहती थी। अब दिल्लगी की बात यह थी कि थानेदार साहब अंग्रेजी नहीं जानते थे और कप्तान साहब अरबी। दोनों एक–दूसरे के मुँह की ओर ताक रहे थे। अरब थानेदार से मेरा परिचय हो चुका था। उसने मुझे अपने पास बुलाया और कहा कि बताओ यह क्या कहता है? मैंने कप्तान साहब की अंग्रेजी का आशय थानेदार साहब को सुना दिया,

जिस पर उन्होंने बीस ऊँटों का प्रबन्ध कर दिया।

ऊँटों का प्रबन्ध हो जाने पर बीस अंग्रेज जहाज से उतरकर तट पर आ गये। आते ही हर एक ने एक-एक ऊँट चुन लिया और सवारी के लिए तैयार हो गये। प्रथम कप्तान साहब सवार हुए। इनका शायद ऊँट की सवारी का प्रथम अवसर था। इन्हें यह ज्ञान था कि ऊँट जब उठता है तो सबसे पहले पिछली टांगे उठाता है। ऊँट के उठते-उठते कप्तान साहब "ओ माई गाड" कहते हुए जमीन पर आ धमके। शेष ऊँटों का उठना था कि आधे से अधिक अंग्रेज भी गिर पड़े, जो आठ-सात अंग्रेज ऊँटों पर सवार हो गये थे, उन्होंने बद्दू लोगों को ऊँटों की नकेल पकड़कर धीरे-धीरे चलने के लिए कहा।

जब ऊँट चल रहे थे तो रास्ते में ऊंची-नीची पृथ्वी पर सब हिचकोले खाने लगे। एक साहब यहाँ भी गिरे । इन्हें गिरता देखकर सब ऊँटों को खड़ाकर दिया गया। एक साहब ने कैमरा निकाल कर सबका फोटो लेना आरम्भ किया। संयोग से इसी समय एक मोटर इधर आ निकली। जंगली ऊँटों ने मरुभूमि में मोटर कब देखी थी ? मोटर की गड़बड़ सुनकर सबके सब वहाँ से भागे। इसके साथ ही सभी अंग्रेज बहादुर भी नीचे आ गए 'डाक्टर' 'डाक्टर' की पुकार मच गई। भला मरुस्थल में सनाय के अतिरिक्त (जिसके खाने से जुलाब लग जाता है) कौन-सी दवाई रखी थी ? आखिर जहाज से एक अङ्गरेज डाक्टर बुलाया गया और उसने थाने में सबकी मरहम पट्टी की। दो-तीन दिन तक थाना एक अस्पताल बना रहा और सभी अंग्रेज यह कहते थे कि पहली बार ऊँट की सवारी की है, फिर ऐसी भूल न करेंगे। मैं यहाँ दो सप्ताह तक प्रचार करके और अंग्रेज बहादुरों की बहादुरी के कारनामे देख कर तीन दिन में मआन (शरकी अल अरदन) पहुँच गया।

अकबा से मआन की ओर सारा दिन चलता रहा। जब शाम हो गई, कुत्तों के भौंकने का शब्द सुनाई दिया। मैं मार्ग छोड़कर उसी ओर चल दिया। आधा मील चलने के उपरांत बद्दुओं के डेरे के पास आ गया। बद्दू लोग आग जलाकर सेंक रहे थे। चारों ओर उनकी बकरियाँ बैठी थीं। मैं भी उनमें जाकर बैठ गया। मुझे भूख लग रही थी। बद्दू स्त्रियों ने ज्वार का आटा ला दिया। पास ही पानी का स्रोत था, मैं वहाँ से जल भर लाया और रोटी पकाई। इसके बाद बद्दुओं ने मुझे बहुत-

सा दूध दिया। रोटी को दूध में डालकर मैंने पेट भर कर खाया।

हम लोग थोड़ी ही देर बैठे थे कि इतने में एक भेड़िया बकरियों पर आ टूटा। कुत्ते जोर–जोर से भौंक रहे थे और बद्दू उस ओर चिनगारियाँ फेंक रहे थे, आखिर वह भाग गया। यहाँ एक दिन और ठहर कर मैं आगे चल दिया।

इसी प्रकार मार्ग में बद्दू लोग मुझे मिल जाते थे। पहाड़ी रास्ता होने से चलना कठिन है। जाड़ों में इतनी सर्दी पड़ती है कि बाहर जंगल में सोया नहीं जाता। बद्दू लोग उन दिनों पहाड़ की गुफाओं में आग जला कर सोते हैं।

बद्दू प्रायः मुझसे पूछते थे कि क्या तुम्हारे देश में ऊँट और बकरियाँ भी होते हैं ? वह कहते थे कि भारतवर्ष में यदि चावल पैदा होता है तो कौन–सी बड़ी बात है ? यहाँ बकरियाँ और ऊँट पैदा होते हैं। कुछ दिनों की यात्रा के उपरांत में मआन पहुँच गया।

मआन एक बड़ा रेलवे स्टेशन है। यहाँ पर रेलगाड़ी अब चलती है। यहाँ से अमान और दमिश्क की ओर लाइनें जाती हैं। यहाँ मआन से कभी मदीना तक रेल जाती थी और रेल की लाइन अब भी मौजूद है, परन्तु इस मार्ग से पैदल जाने वालों को बहुत कठिनता का सामना करना पड़ता है, क्योंकि रास्ते में आबादी नहीं है।

मआन, अमान, अकबा, ये सब शरकी अल अरदन के इलाका में हैं और यहाँ अमीरअबदुल्ला का शासन है, परन्तु अंग्रेज सेनाओं को अमीर साहब ने स्थान दिया हुआ है। मआन में एक गोरा पल्टन रहती है। फुटबाल के खेल में अरब लोग भी गोरों के साथ खेलते हैं। इसके अतिरिक्त वायरलेस भी लगा हुआ है। हवाई जहाज के लिए भी अच्छा स्थान बना हुआ है।

यहाँ जाड़ा बहुत पड़ता है, क्योंकि पहाड़ी स्थान है। मैंने बारह दिन तक प्रचार किया। मैंने मआन में देखा कि चाय और कॉफी पिलाने के बड़े–बड़े होटल हैं तथा इन सब में फोनोग्राफ बज रहे हैं। बस यहाँ से गाना–बजाना सिनेमा–थियेटर आदि होना आरम्भ हो जाता है। शरकी अल अरदन, मिश्र, फिलस्तीन, शाम, अल इराक, तुर्की, अदन, ये सब स्थान सिनेमा–थियेटर गाना–बजाना और शराब की बिक्री के लिए तीर्थ माने जाते हैं। एक बार मौलाना शौकत अली साहब ने फिलस्तीन में एक पत्र के संवाददाता से इन्टरव्यू में कहा था

कि बैतुलमुकदस की पवित्र भूमि में इन वस्तुओं की बिक्री होना खेदजनक है, परन्तु दूसरे दिन ही मिश्र के ''अलबलारा'' पत्र में छपा हुआ था कि मौलाना शौकत अली ने स्वयं शराब पी है। इसके पूरे हालात तीसरे परिच्छेद में लिखूँगा। मैं यहाँ से अमान आठ दिन में पहुँच गया।

यहाँ का शासक अमीर यहीं पर रहता है। वह अतीव शुद्ध हृदय और न्याय-प्रिय शासक है, परन्तु उसने भी तीन सौ गुलाम स्त्री व पुरुष रखे हुए हैं। सारे शरकी अल अरदन में धनी लोगों ने गुलाम रखे हुए हैं। मैंने एक सप्ताह तक प्रचार किया। यहाँ से बैतुल मुकद्दस (फिलस्तीन) आठ दिन का मार्ग है। अकबा का एक सज्जन, जो मेरे हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) में सम्मिलित हो चुका था, मुझे अपने यहाँ अकबा ले गया। एक सप्ताह तक वहाँ भी प्रचार किया।

काहिरा (मिश्र) को प्रस्थान

अकबा से छः घंटे की दूरी पर मिश्र की सीमा आरम्भ होती है। सीमा पर ''नकब'' का थाना है। थाना के अतिरिक्त यहाँ कोई आबादी नहीं है। जब मैं थाना में पहुँचा तो मुझसे पासपोर्ट माँगा गया क्योंकि बिना पासपोर्ट के कोई भी मिश्र नहीं जा सकता। मैंने उत्तर दिया कि यह सारी पृथ्वी परमात्मा की है और हम भी परमात्मा की प्रजा हैं। हमारे पास उसका पासपोर्ट है, परन्तु थाने वालों ने इस पर कुछ ध्यान न दिया।

नकब थाना से टेलीफोन, तार, रेल, मोटर के जरिये सारे मिश्र के साथ सम्बन्ध है, अलअरीश (सैन्या) में, जो कि मिश्री सीमाओं का एक बड़ा केन्द्र है, एक बड़ा अरब गवर्नर रहता है। थाने में से मैंने टेलीफोन किया कि क्या मुझे कृपा करके मिश्र में आने की आज्ञा दे सकते हैं ? उसने मुझे कोई उत्तर न दिया, परन्तु थाना के सिपाहियों से कह दिया कि मुझे कहीं मत जाने दो। मुझे सिपाहियों ने आज्ञा दी कि अब तुम कहीं नहीं जा सकते। पूछने पर उन्होंने यह भी बतलाया कि मिश्र का बादशाह जलालातलमलिक फव्वाद है, जो कि एक मुस्लिम बादशाह है। मेरे पास कोई कोट न था। जाड़ा बहुत पड़ रहा था, इसलिए मैंने एक बोरी का कोट बनाकर ओढ़ रखा था।

दूसरे दिन गवर्नर की भेजी हुई एक मोटर आई, जिसमें एक हवलदार साहब बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे मोटर में बैठने को कहा। मैं

बैठ गया। थोड़ी देर में अल अरीश पहुँच गये। अरब गवर्नर ने मुझसे भारतवर्ष से लेकर यहाँ तक पहुँचने का सारा वृत्तान्त पूछा। मैंने उसे बता दिया कि मैं जिस इलाका में जाता हूं उसमें प्रवेश करने से पूर्व वहाँ के बादशाह से आज्ञा ले लेता हूँ। उसे पूरा विश्वास हो गया कि मैं एक सच्चा मनुष्य हूँ और ईश्वर की आज्ञा पालन के लिए लोगों में हिजबुल्लाह धर्म का प्रचार करने निकला हूँ। मैं बादशाह फव्वाद से मिलना चाहता हूँ, इसलिए उन्होंने एक तार जलालातलमलिक के पास काहिरा में भेज दिया और मुझसे कह दिया कि जब तक उत्तर न आवे तुम अलअरीश से कहीं बाहर मत जाना। दो दिन तक तो मैंने हिजबुल्लाह का खूब प्रचार किया और जमीयतल हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) भी बना ली।

रात के दस बजे का समय होगा। दस–बीस मनुष्य मेरे पास बैठे थे और मैं उनमें प्रचार कर रहा था। इतने में एक सिपाही ने मेरे पास आकर कहा कि चलिये, थाने में तहसीलदार साहब ने बुलाया है। मैं थाना में पहुँचा तो तहसीलदार साहब थाना से बाहर जा चुके थे, इसलिए मुझे दूसरे दिन आने की आज्ञा हुई।

तहसीलदार साहब का लड़का मेरा मित्र बन चुका था और हिजबुल्लाह का सदस्य था। वह भी उस रात्रि को मेरे प्रचार में सम्मिलित था और उसकी बहिन, जो स्कूल में पढ़ रही थी, उसके साथ आई थीं। थाना में यह दोनों मेरे साथ गये थे।

दूसरे दिन सवेरे मैं लड़कों के स्कूल में गया। वहाँ अंग्रेजी और अरबी की शिक्षा दी जा रही थी। मैंने जब उन लड़कों के साथ अंग्रेजी में बातचीत की तो मेरी अंग्रेजी को सुनकर वहाँ के लड़के और मास्टर बहुत प्रसन्न हुए। उनको मेरा बोलने का ढंग बहुत भाया, क्योंकि 'डिड' को 'दिद' और 'ह्वाट' को 'वत' कहते थे। तहसीलदार साहब का लड़का अपने हैंडमास्टर साहब से छुट्टी लेकर मेरे साथ आया था और मुझे लड़कियों के अंग्रेजी स्कूल में ले गया जहाँ उसकी बहिन पढ़ती थी। बहिन ने भाई को आते देखा तो उठकर उल्लास से बाहर आ गई और मेरा परिचय अपनी शिक्षिका से कराया।

मेरे बोरी वाले कोट को देखकर कन्याएँ खूब हँसी और कहने लगी—''क्या यही आदमी अंग्रेजी जानता है ? ये तो पढ़ा–लिखा नहीं जान पड़ता।'', परन्तु मैंने जब उनसे अंग्रेजी में बातचीत की तो उन

पर प्रभाव पड़ा । शिक्षिका ने उसी समय एक दर्जी को बुलाया और उसे मेरे लिये एक मिश्री लिबास बनाने के लिए कह दिया। मैंने बहुत कहा कि मुझे बढ़िया लिबास की आवश्यकता नहीं, परन्तु उन्होंने एक न सुनी और उसी शाम तक कपड़े सिलकर भी आ गये। मुख्याध्यापिका ने मुझसे कहा कि आप नित्य एक घंटा इन कन्याओं को अंग्रेजी पढ़ाने आया कीजिये।

स्कूल से निकल कर मैं थाना में गया। तहसीलदार साहब ने कहा कि मिश्र से एक तार आया है। काहिरा की पोलीस जलालतलमलिक से आप के मिश्र में प्रवेश की आज्ञा माँग रही है, परन्तु जब तक वहाँ से स्वीकृति नहीं आती उस समय तक आप अलअरीश में रहें। आप सारा दिन जहाँ चाहें घूम फिर सकते हैं, परन्तु रात के दस बजे थाना में सोया करें।

मैं जब रात को थाना में सोने के लिए गया तो देखा कि हवालात यात्रियों से भरी हुई है, जो लोग फिलस्तीन की ओर से बिना पासपोर्ट के मिश्र आते हैं चाहे वे लोग मिश्र के हों चाहे विदेशी, उनको हवालात में रोक दिया जाता है। जब तक पुलिस उनके गाँव और अन्य बातों का ठीक-ठीक पता नहीं लेती तब तक वे वहीं बन्द रहते हैं। कुछ रोज हवालात में रखने के बाद उन्हें सिपाहियों के साथ वापिस उन देशों सरकारों के पास भेज दिया जाता है। मैं नित्य रात को थाने में सोता और दिन को अलअरीश प्रचार करने के लिए चला जाता।

एक बार भारतवर्ष के कुछ दर्वेश मिश्र को जाते हुए अलअरीश में पकड़ लिये गये। पुलिस ने उनको डाक्टरी परीक्षा के लिए दस दिन के लिए कराँटीन भेज दिया। मैं नित्य उन दर्वेशों के पास जाता था और उनकी सहायता करता था, क्योंकि उनके पास धन न था। कराँटीन के स्थान से उनको बाहर जाने की आज्ञा न थी। कराँटीन के बाद उनको फिलस्तीन की गवर्नमेंट के हवाले कर दिया गया, क्योंकि ये वहीं से आए थे।

मैंने पूरे दो मास तक यहाँ प्रचार किया और हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) स्थापित की। पौने दो मास के बाद मुझे मिश्र जाने की आज्ञा मिली और इसके साथ ही हिजबुल्लाह के प्रचार करने के लिए भी आज्ञा मिल गई।

आज्ञा मिल जाने के बाद भी हिजबुल्लाह के मैम्बरों के आग्रह

करने पर मैं अलअरीश में कुछ दिन और ठहर गया। इस पर पुलिस ने अरब गर्वनर को लिख दिया कि यद्यपि मुझे पंद्रह दिन से मिश्र जाने की आज्ञा मिल चुकी है, परन्तु अब तक यह व्यक्ति अलअरीश में घूम रहा है। मुझे गवर्नर साहब ने अपने पास बुलाया और कारण पूछा तो मैंने उत्तर दिया कि जब मुझे सारी मिश्र भूमि में घूमने की आज्ञा मिल चुकी है तो मेरी इच्छा है जहाँ जितने दिन चाहूं प्रचार करूँ। अलअरीश भी तो मिश्र की भूमि है। गवर्नर साहब यह सुनकर बहुत संतुष्ट हुए और मुझे दो मिश्री पौंड प्रदान किये।

अब काहिरा ले चलने से प्रथम आपको अलअरीश की कुछ और बातें भी बता दूँ। मैं कह ही आया हूँ कि मिश्र की सीमा नकब थाना (सेना) से आरम्भ होती है। इस थाने में टेलीफोन लगा हुआ है, जिसका सम्बन्ध अलअरीश और स्वेज से है। यहाँ से दो सड़कें जाती हैं। एक मार्ग तो स्वेज को जाता है और दूसरा अलअरीश को। नकब से दो दिन की दूरी पर कुन्तला आता है। कुन्तला से एक दिन की दूरी पर अलअरीश है।

जब मैं मोटर से अलअरीश में आया तो यहाँ की अरबी सुनकर बहुत अचंभित हुआ। रजुल (आदमी) को रगुल, मस्ज़िद को मस्जिद, मौजूद को मौगूद और अलफजर को अलफगर कहते थे। हर नये स्थान की बोली सीखना मेरा काम ही रहा है। सो यहाँ भी मुझे मिश्र की अरबी बोली, जो कि हजाजी अरबी के सदृश है, सीखने में कुछ कठिनता न हुई। अलअरीश में एक रेलवे स्टेशन है, जहाँ बेतुलमुकदस (फिलस्तीन) से रेलगाड़ी आती है और काहिरा को जाती है। यहाँ वायरलैस का स्टेशन भी है।

यहाँ के रेत के बड़े-बड़े टीले देखते ही बनते हैं। संयोग से मैं एक दिन शाम को इन टीलों की ओर, जो सैर करता हुआ जा निकला कि आँधी आ गई। चार-पाँच मिनट तक रेत से बचने के लिए आँखें मूंदे रहा। इसके बाद जो आँखें खोली तो बड़ा भयानक दृश्य दिखाई दिया। चारों ओर मनुष्यों की खोपड़ियाँ और हड्डियाँ बिछी हुई थीं। वापिस लौटने पर बताया गया कि यही वह स्थान है जहाँ गत महायुद्ध में जर्मनी और तुर्की की सम्मिलित सेनाओं का भारतीय सिक्खों और राजपूतों से सामना हुआ था। कहते हैं कि उस दिन केवल तलवार का युद्ध हुआ था। वीर तुर्की सेना जर्मनी की ओर से लड़ रही थी, परन्तु

सिक्खों और राजपूतों को ताब न ला सकी। कुछ रणक्षेत्र में काम आई और शेष भाग खड़ी हुई। सिक्खों का इतना सम्मान करते हैं कि प्रत्येक दाढ़ी वाले से पूछते हैं कि 'अन्ता मुसलिम बला सीक ?' अर्थात् क्या तुम सिक्ख हो या मुसलमान ?

कहा जाता है कि तुर्की सेना को अपनी तलवार पर बहुत अभिमान था। जब अलअरीश से तुर्की सेना भागी थी तो वहाँ से तीन दिन की दूरी पर राजाह (फिलस्तीन) में जाकर दम लिया और सिक्ख व राजपूत सेनाओं को केवल तलवार की लड़ाई के लिए ललकारा। इस पर सिक्ख सेना वहीं पहुंच गई। घमासान युद्ध हुआ, जिसका वर्णन अगले परिच्छेद में करूँगा। कहते हैं कि अलअरीश में बारह दिन तक कुत्तों और कोवों की दावत उड़ी, क्योंकि लाशों को कोई उठाने वाला न था। राजपूत सेनाओं के चले जाने पर लोग अलअरीश में फिर आ बसे और उन शवों पर मिट्टी डाल दी गई, जिससे अब आँधी चलने पर हड्डियाँ निकल आती हैं।

अलअरीश के लोग बहुत अच्छे हैं जिन्होंने दो मास तक मेरे वैदिक धर्म के प्रचार को सुना। मैं उन सज्जनों का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे हिजबुल्लाह को स्थापित करने में मेरी सहायता की और ईश्वर से प्रार्थी हूँ कि वे लोग अपने धर्म पर आरूढ़ रहें।

मैं अलअरीश से रेल में सवार होकर काहिरा के लिए चल पड़ा। रास्ते में छोटे-छोटे गाँव और एक बड़ा स्टेशन कनतरह आता है। कनतरह के उस पार गाड़ी खड़ी हो जाती है और सब यात्रियों के असबाब की तलाशी ली जाती है, जिससे कोई चर्स आदि छिपा कर मिश्र में न ले जाये। कनतरह अरबी भाषा में 'पुल' को कहते हैं, जो नहर स्वेज से निकाल कर पोर्टसईद तक लाई गई है, वह यहाँ आती है और उस पर यहाँ 'कनतरह' पुल बंधा हुआ है। पुल की दूसरी ओर एक बड़ा गाँव बसा हुआ है। इसका भी नाम कनतरह पड़ गया है। इस पुल में यह विशेषता है कि जब कोई बड़ा जहाज इसके नीचे से गुजरने लगता है तो उसे उठा दिया जाता है। रेलगाड़ी जो फिलस्तीन से आती है कनतरह के पास खड़ी हो जाती है और मुसाफिर पुल के जरिये पार हो जाते हैं। फिर यह (इस्माऐल) से होती हुई काहिरा को जाती है।

अलकाहिरा (काहिरा) बहुत बड़ा नगर है या यूँ कहिये कि अफ्रीका का सबसे बड़ा नगर है। उसके चौड़े-चौड़े बाजारों में मोटरों

और ट्राम गाड़ियों का ताँता सा बँधा रहता है, बाजारों में बड़ी–बड़ी चाय और कॉफी की दुकानें हैं जिन्हें अरबी में मकाही कहते हैं। यहाँ यह रिवाज है कि शाम को लोग चाय और कॉफी की दुकानों पर बैठ जाते हैं और ताश खेलते हैं, जो हार जाता है वह सबको चाय पिलाता है। यहाँ केवल दो ही पहनावे दिखाई देते हैं। एक तो मिश्र की गवर्नमैंट का है अथवा वहाँ के बादशाह मलिक फव्वाद का है। वह स्वयं कोट पतलून और सिर पर लाल तुर्की टोपी पहनता है। वही कपड़े उसकी प्रजा पहनती है। जब शाम के समय किसी चाय की दुकान पर नजर पड़ती है तो हर तरफ लाल ही लाल रंग दिखाई देता है। दूसरा लिबास बजुहरी या जामा अल अजहर का है। कोट, पतलून, लाल टोपी और उसके ऊपर दो उंगल चौड़ा एक गज लम्बा सफेद कपड़ा लिपटा हुआ होता है, जिसे अरबी में 'लफा' कहते हैं। हर मकाही में फोनोंग्राफ बजता है। शराब का खूब दौर चलता है। मिश्री लोग यदि राह चलते किसी मित्र को बुलायेंगे तो चाय के स्थान में उसे शराब ही पेश करेंगे।

यहाँ स्त्रियाँ अधिकतर यूरोपियन भेष में रहती हैं। बुर्का तो कोई पहनती ही नहीं। शाम के समय यदि किसी बाजार में खड़े होकर दृष्टि दौड़ायें तो जैसे एक समुद्र ठाठें मारकर बह रहा हो। बाजारों में खुले मुँह स्त्रियाँ चलती–फिरती हैं। मिश्र सिनेमा, थियेटर का तो घर है ही, वहाँ नर–नारी को स्वयं नाचने का भी बहुत चस्का है। मौसीकी (गाने बजाने) के तो अनगिनत स्कूल खुले हुए हैं। प्रत्येक स्त्री पुरुष अपना फोटो अवश्य उतरवाता है, परन्तु आश्चर्य है कि उन पर कुफ का फतवा नहीं लगता। हिन्दुस्तानी मुसलमान भाई अपनी कदूरी कनज और शरीयत की पुस्तकें खोल कर देखें।

मैंने वहाँ एक बार दाढ़ी के विपक्ष में अरबी अखबारों में कुछ लिखा। बस फिर तो एक लहर सी चल पडी। मिश्र के बड़े–बड़े व्यक्तियों ने दाढ़ी के विपक्ष मे बहुत लेख लिखे। इसका फल यह हुआ कि अब कोई वहाँ भूलकर भी दाढ़ी नहीं रखता। इस मामले में मिश्र तुर्की की भी बहन बन गई है । यदि कोई दाढ़ी वाला बाजार में से गुजरता है तो उस पर लोग चिल्लाते है कि "सुनया मुनया या इहलक।" अर्थात् दाढ़ी कटवा दो और इसके बाद उसकी गालियों से खबर ली जाती है।

एक दिन मैं एक भारतवर्षीय मित्र के साथ बाजार में से जा रहा था। यह मिश्र की अरबी यूनिवर्सिटी '**जामिया अज अजदर**' में पढ़ने के लिए आया था। इसने भारतवर्ष के नमूने पर एक मामूली दाढ़ी रखी हुई थी बस जी, हम नहीं जाते मार्ग में बच्चे हमें घेर लेते और तालियाँ पीटते थे। चिल्लाते थे—''**सुनया मुनया या इहलक**'' दाढ़ी कटवा डालो, जो अरब वहाँ से गुजरता, उससे पूछता कि अन्ना मुसलिम वला सीक ? तुम मुसलमान हो या सिक्ख ? बेचारे ने बहुत बचना चाहा और जब तक बन पड़ा उत्तर देता रहा, परन्तु अन्त में इतना घबरा गया कि दाढ़ी को साफ करा दिया।

ऐसे ही एक साहब रियासत भोपाल के वजीफे पर जामिया अज मजहर में अरबी पढ़ने को आये हुए थे और मेरी इनसे अच्छी बोलचाल हो गई थी। उनकी भी लम्बी दाढ़ी से खुदा का नूर टपकता था, एक दिन क्या देखता हूं कि दाढ़ी साफ करवा दी और ऐनक लगाये हुए जा रहे हैं, जिससे कोई पहचान न सके। मैंने साधारण तौर पर उन्हें बुलाया और इस एकाएक परिवर्तन का कारण पूछा। बहुत मुश्किल से उन्होंने बताया कि उन्होंने जामिया अल अजहर की डिग्री प्राप्त कर ली है और यह सब उसी के लिए किया गया था।

मिश्र में दाढ़ी वालों से एक सा व्यवहार होता है। एक बार दक्षिणी अफ्रीका से कुछ बोहरे मुसलमान यहाँ आये। उस दिन नगर में साद जगलोल का जन्म दिन मनाया जा रहा था। नगर के सारे बाजार सजे हुए थे। शाम का समय था, जिस बाजार से ये स्त्री पुरुष गुजरते थे, बच्चों का झुंड उनके पीछे–पीछे था और तालियाँ पीट–पीट कर इनको हैरान कर रहा था। दाढ़ियाँ लटक रही थीं और स्त्रियों ने अपने सिर से पाओं तक बुर्के से इस प्रकार ढक रखा था कि यह भी जानना कठिन था कि इसके भीतर पुरुष है या स्त्री। ऐसा बुर्का भोले बच्चों ने कभी अपनी आयु में देखा न था, तालियाँ पीटते जाते थे और चिल्ला–चिल्ला कर अपनी भाषा में कहते थे—'**सुनया मुनया या इहलक**' अर्थात् ''दाढ़ी कटवा डालो, दाढ़ी कटवा डालो''। मैं कुछ देर तक यह कौतुक देखता रहा, परन्तु नहीं कह सकता कि इसके बाद क्या हुआ।

काहिरा में अरबी के बहुत प्रेस हैं, जहाँ अरबी की पुस्तकें और अखबारें छपती हैं। पुस्तकें पढ़ने कि लिए लायब्रेरियाँ भी बहुत हैं। इनमें सबसे बड़ी लायब्रेरी ''**दारुलकुतबुलमिसरिया**'' है, जिसमें

सब भाषाओं की पुस्तकें हैं। मुझे कुछ संस्कृत की पुस्तकों की आवश्यकता हुई। इसमें जाकर देखा तो एक अष्टाध्यायी संस्कृत में जर्मन छापे की है, जिसका अनुवाद जर्मन भाषा में है और जर्मनी की ही छपी हुई है। सूत्र आदि सब संस्कृत में हैं। मैंने इन्हें खोल कर देखा था। यह बहुत काल के छपे हुए हैं। इसके अतिरिक्त एक शास्त्र भी आदि–संस्कृत में है और जर्मन भाषा में उसका अनुवाद है। भगवद् गीता आदि मिलाकर कुल बाइस पुस्तकें वहाँ थी।

भारतवासी मुसलमानों के लिए मिश्र के हालात बहुत मनोरंजक होंगे, मिश्र के मुसलमान फोटो खिचवानें में अंग्रेजी से भी बाजी ले गये हैं। कोट पतलून ने तो मिश्रियों के मन को ऐसा मोह लिया है कि सड़क पर रोड़ी कूटने वाला कुली भी सूट पहन कर काम करता है। मिश्र की सरकार की ओर से हर एक को आवश्यक शिक्षा दी जाती है और सोलह वर्ष से कम की कन्या का विवाह नहीं हो सकता। मिश्र अरबी भाषा का घर है जहाँ से अरबी के पत्र और पुस्तकें अनगिनत संख्या में निकलती हैं। मिश्र में ट्रामवे चलती है। यहाँ का बादशाह मलिक फव्वाद है, जो अतीव शुद्ध हृदय, न्याय–प्रिय और दयावान् शासक है। उसका पुत्र समू अलअमीर फारूक है, जो अतीव होनहार युवराज है। मिश्र में मलिक फव्वाद का अपना ही सिक्का चलता है। रयाल, निरफ रयाल, कुर्श, निरफ कुर्श, पौंड आदि सिक्के यहाँ प्रचलित हैं। हर सिक्के के दोनों ओर मलिक की तस्वीर होती है। ऐसे ही पोस्ट आफिस की टिकटों आदि पर उसका चित्र बना होता है।

अंग्रेजों की ओर से यहाँ एक हाई कमिश्नर रहता है, जिसे अरबी में मन्दूब सामी कहते हैं। प्रत्येक वार्षिक बजट (व्यय) को हाई कमीश्नर ही पास करता है। अंग्रेजी की एक गोरा पलटन मिश्र में और एक इसकंद्रिया में रहती है। मिश्र में भी दो पोलीटीकल पार्टियाँ हैं। एक पार्टी मलिक मफाद की है और दूसरी साद जगलोल की। सादजगलोल की पार्टी यह कहती है कि देश में सार्वजनिक राज्य अर्थात् लोगों के चुने हुए प्रतिनिधि राज्य कार्य करें और मलिक फव्वाद ने ही अंग्रेजों को मिश्र में बिठाया हुआ है। मलिक फव्वाद के राज्य से हटते ही अंग्रेजों को भी बोरिया बिस्तर सम्हालना पड़ेगा। जिन दिनों भारत में खद्दर और स्वदेशी माल का प्रचार हो रहा था, उस समय मिश्र में भी चारों ओर "अलबसो अलवतनी" अर्थात् स्वदेशी माल पहनों

की ध्वनि आती थी। वहाँ जाने से मुझे अनुभव हुआ कि महात्मा गाँधी केवल भारतवर्ष के ही नेता नहीं है, वरन् सारे पूर्वीय संसार के भी पूज्जनीय हैं। मिश्री लोग महात्मा गाँधी को "महात्मा गान्दी" कहते हैं, क्योंकि अरबी में "ग" नहीं है और इसका उच्चारण "ग़" से होता है। मुझसे प्रायः मिश्री लोग पूछते थे कि "**अन्ता तारफ गाँदी**" याने क्या तुम महात्मा गाँधी को जानते हो ? मैं कहता, नाम तारिफ हो, हाँ जानता हूँ। वे मुझे बड़े सम्मान से बिठाते थे। महात्मा जी के विषय में बड़े प्रेम से प्रश्न करते थे और, जो कुछ उन्होंने देश के लिए किया सब चाव से सुनते थे। सब कुछ उन्होंने देश के लिए किया सब चाव से सुनते थे। सब कुछ सुन कर अन्त में वे ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि वे अपने कार्य में सफल हों। केवल मिश्र में ही नहीं, वरन् महात्मा गाँधी का नाम मैंने मरुस्थल के बद्दू लोगों और ईरान, नजदोहजाज, फिलस्तीन, शाम, तुर्की, अलइराक, संक्षेप में जहाँ-जहाँ भी मैंने भ्रमण किया वहाँ-वहाँ के लोगों की जिह्वा से सुना। वे सब इतनी दूर पर से बैठे महात्मा जी को आशीर्वाद दे रहे हैं।

मिश्र की अरबी यूनिवर्सिटी, जामाअलअजहर भी विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि भारतवर्ष से यहाँ लोग अरबी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते हैं। इसमें विद्यार्थियों की बड़ी भारी संख्या पढ़ती है। भारत के अतिरिक्त अफगानी, ईरानी, अरबी और जावी लोग भी यहाँ पढ़ने के लिए आते हैं। भारतवर्ष के अरबी के विद्यार्थी जब देवबंद से विद्या ग्रहण कर चुकते हैं तो आगे पढ़ने के लिए उन्हें यहीं आना पड़ता है, जिस समय का वर्णन मैं कर रहा हूं, उस समय यहाँ बाईस विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। विद्यार्थियों का अलग बोर्डिंग हाऊस है, जिस खाकुलहनूद कहते हैं। यहाँ पर वे इकट्ठे रहते हैं और आपस में अरबी भाषा की बजाय उर्दू में बातचीत करते हैं, जिससे अरबी में पर्याप्त उन्नति नहीं कर सकते। भारतवर्ष में देवबंद अरबी का सबसे बड़ा स्कूल माना जाता है, परन्तु वहाँ से निकल करके, जो छात्र यहाँ शिक्षा के लिए आते हैं, वे यहाँ बोलचाल भी नहीं कर सकते। एक भारतीय विद्यार्थी से किसी ने अरबी में पूछा कि भारतवर्ष में किस वस्तु की खेती होती है ? बेचारा अरबी में अपना अभिप्राय भी न कह सका।

जामिया अलअजहर में सभी देशों के छात्र पढ़ने को आते हैं,

इसलिए भारतीयों के लिए पढ़ाई का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। उनको वहाँ के विद्यार्थियों के साथ ही पढ़ना पड़ता है। अरबों की तो अलग-अलग श्रेणियाँ हैं, जिनकी परीक्षा वार्षिक होती है। सबको नियमपूर्वक उनमें जाना पड़ता है, परन्तु भारतीयों के लिए कोई श्रेणी नहीं है। वे जिस श्रेणी में चाहें पढ़े और, जिस परीक्षा में चाहें बैठें, यह सब उन्हीं की इच्छा पर छोड़ दिया जाता हैं। फलतः ये विद्यार्थी नौ दस वर्ष में दो या तीन परीक्षायें पास कर गये तो गनीमत, नहीं तो मिश्र में सैर करने के स्थानों का घाटा है ही नहीं। जब रजिस्टर हाजिरी में नाम ही नहीं लिखा गया तो भला किसको पड़ी है कि नियमपूर्वक जाये।

रवाकुलहनूद (भारतीयों का बोर्डिंग हाऊस) जामिया अलअजहर से लगभग एक मील की दूरी पर है। वहाँ बैठ, ये लोग उर्दू में जलसे करते हैं। एक व्यक्ति आकर कहता है कि मैं जामिया अलअजह गया था, वे मुझे अलहिन्दी कह कर चिड़ाते हैं। इस पर सब मिल कर कहते हैं कि यह बात सत्य है कि अजहर वाले हमें अलहनूद कहते हैं और हिन्दुस्तान को अलहिन्द कहकर पुकारते हैं। कोई कहता कि मेरी दाढ़ी को देखकर किसी ने पूछा—"अन्ना मुसलिम वला सीक ?" अर्थात् तुम मुसलमान हो या सिक्ख ? सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। इस प्रकार के मत वहाँ रोज पकाये जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने मन की भड़ास निकालता है, परन्तु नक्कार खाने में तूती की कौन सुनता है ?

जामिया अलअजहर का शेख साहिब अच्छा पढ़ा-लिखा व्यक्ति है। एक बार मिश्र के मंत्री सिदकी पाशा ने अपने किसी लड़के-लड़की के विवाह पर अलअजहर के शेख साहिब और उसके छात्रों को न्योता दिया। जहाँ बहुत से अन्य सज्जन गये, वहाँ शेख साहिब भी चले गये और मैं भी था। सबसे पहले मिश्री लड़कियों का नाच हुआ और मैं मिश्र के प्रसिद्ध पत्र "**अल एहराम**" के कार्यालय में गया। वहाँ एक लेख मैंने और एडीटर साहिब ने लिखा कि शेख साहिब को चाहिए था कि प्रथम शराब को बन्द कराते, यदि वह इसमें अपने को असमर्थ पाते तो खेद के तौर पर वहाँ से उठकर चले आते। यदि वे ऐसा करते तो लाचार हो कर विवाह वालों को शराब बन्द करनी पड़ती, क्योंकि शेखा साहिब मिश्री मुसलमानों के इमाम हैं और स्वयं बादशाह भी उसके पीछे नमाज़ पढ़ते हैं।

अब मिश्र के अजायब घर का हाल सुनिये। यहाँ फिर–उन, जो कि मिश्र का बादशाह हो गुजरा है, उसकी एक लाश सावधानी से रखी हुई है। इसी प्रकार चार हजार वर्ष के मुदों के शव भी रखे हुए हैं जिनमें से कुछ पृथ्वी के नीचे से और कुछ अलएहराम में से प्राप्त हुए हैं। इन शवों के ऊपर ऐसा मसाला लगा हुआ है, जो उनको सड़ने नहीं देता और वे ज्यों की त्यों रखे हुए हैं।

अलएहराम मिश्र की एक प्रसिद्ध सैर गाह है। यह पहाड़ के सदृश मिश्र के सब मकानों से ऊँचा है और प्राचीन काल के पत्थरों का बना हुआ है। यह नीचे से चौड़ा है, परन्तु ऊपर जाकर तंग हो गया है। इसी के भीतर से फिरुन की देह मिली है। मनुष्य–देहों के अतिरिक्त खाने–पीने की वस्तुएँ और मरी हुई बकरियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पुराने लोगों का इन शवों के साथ अनाज को रखने का कारण यह बतलाया जाता है, उनका विश्वास था कि कयामत (प्रलय) के दिन ये सब मुर्दे जीवित हो जायेंगे और जीवित होते ही खाना खायेंगे। नौकर उनकी सेवा करेंगे, इसलिए ये सब वस्तुएँ उन्होंने एकत्रित कर दी थी।

वहाँ बड़े–बड़े तीन अलएहराम हैं और साथ ही पत्थर की एक भारी मूर्ति है, जिसे अबुल्होल कहते हैं। यह मूर्ति महात्मा बुद्ध से मिलती–जुलती है, परन्तु एक कान टूटा हुआ है। इस अबुल्होल को देखने से जान पड़ता है कि पिछले समय में वहाँ आर्य बसे हुए थे, जो लोग मिश्र में सैर के लिए आते हैं, वे इन मीनारों को अवश्य देखते हैं। इसलिए यहाँ दर्शकों की भीड़ दिन–रात लगी रहती है।

यहाँ एक चिड़िया घर भी है, जिसे **'हदीका तुल हैवनात'** कहते हैं। इसमें भाँति–भाँति के पशु हैं। इनमें एक हाथी भी है, क्योंकि हाथी यहाँ वालों के लिए आश्चर्य जनक वस्तु है और अरब लोग हाथी को देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं।

मैंने चिड़िया घर के मैंनेजर के सामने एक राय पेश की कि, जिस प्रकार आपने अरबों के लिए यहाँ एक हाथी रखा हुआ है इसी प्रकार अंग्रेज दर्शकों के लिए एक ऊँट भी मँगाइये। मैनेजर साहब ने इस राय को बहुत सराहा और उसी शाम तक चिड़िया घर में एक ऊँट भी आ गया।

मिश्र में कोई कब्रिस्तान नहीं है। लोगों ने शहर से बाहर अपने–अपने मकान बना रखे हैं जिनके नीचे तहखाना होता है। जब कोई मर

जाता है तो उसी तहखाने में छोड़ आते हैं। न नमक डालते हैं न मिट्टी। केवल शव को रखकर तहखाना के मुँह पर एक पत्थर रखकर चले आते हैं। एक बार शाही खानदान के किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई थी तो मुझे भी एक तहखाना देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शव को वह तहखाने ले गये और वहाँ छोड आये। संयोग से तीन दिन के बाद उसी घराने में एक और मृत्यु हो गई, उसे भी वहाँ छोड़ने के लिए ले गये। जब तहखाने के मुँह पर से पत्थर उठाया तो ऐसी खराब बदबू आई कि दो फर्लांग तक कोई खड़ा नहीं हो सकता था। उस समय मैंने उन्हें मुर्दों का दफनाने की हानियाँ बताईं। मुर्दों को जला देने की विधि और लाभ बताये, जिसको सुनकर सब लोगों ने पसन्द किया।

मिश्र में सिन्धी हिन्दू बहुत बड़े-बड़े कारोबार करते हैं। मैंने तीन मास यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार किया, जिससे जमीयतुल हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) स्थापित हो गई, परन्तु शोक से लिखना पड़ता है कि जहाँ कहीं भी मैंने प्रचार किया, वहाँ भारतवर्ष से कोई उपदेशक नहीं पहुँच सका। उपदेशकों के बिना कार्य आगे बढ़ना असम्भव है।

मिश्र में अरबी ईसाई भी दस लाख से कम नहीं हैं। जब मैं मिश्र में प्रचार कर रहा था तो जहाँ अरब लोग मेरे हिजबुल्लाह में सम्मिलित होते थे। वहाँ अरब ईसाई भी आते थे। मिश्र में जहाँ अरबी का बहुत रिवाज है वहाँ अंग्रेजी के भी बहुत स्कूल हैं। इन स्कूलों में भारतवर्ष के सदृश ही अंग्रेजी सिखाई जाती हैं। कन्याओं के अंग्रजी के स्कूल भी बहुत हैं। अंग्रेजी ही नहीं, वरन् फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन, हौलेंड वालों को भाषाएँ भी पढ़ाई जाती हैं।

मिश्र के बाजार भारतवर्ष के बड़े-बड़े बाजारों से मिलते हैं। मिश्रियों का खाना भी हमारे जैसा होता है। नजदो हजाज् की तरह यहां खजूर पर काम नहीं चलता। हर प्रकार के फल तरकारी सुविधा से प्राप्त हो सकते हैं। दूसरे देशों की वस्तुएँ भी नहीं स्वेज से यहाँ आ जाती हैं।

इसकन्द्रिया को प्रस्थान

काहिरा के बाद मैं पैदल ही इसकन्द्रिया की ओर चल पड़ा। मिश्र की भूमि बहुत ही उपजाऊ है। नील नदी से कई छोटी-छोटी नहरें निकाली गई हैं। जिनसे सारे मिश्र की खेती होती है। एक सप्ताह चल कर मैं तनता पहुँच गया। वहाँ सैयदअहमद अल बदवी की जियारत

हैं। लोग इसके दर्शनों के लिए आते हैं और मुरादें मांगते हैं। मुरादें मांगते समय शायद वे ईश्वर को बिल्कुल भूल ही जाते हैं। मिश्री लोग कब्रों को बहुत पूजते हैं और तावीजों पर इनकी बड़ी श्रद्धा है। ज्योतिष और रमल की तो यहाँ मानो तिजारत ही है। यदि यहाँ पर इबनसऊद जैसे सुल्तान का शासन होता तो इनसे पाखण्ड छुड़ाकर इन्हें केवल ईश्वर की भक्ति का उपदेश देता।

मिश्र में एक मनोरंजक रिवाज यह है कि वे किसी हिन्दू या मुसलमान को पगड़ी बाँधे हुए देख पाते हैं तो झट से उसके आगे हाथ बढ़ा देते हैं और कहते हैं अन्ता तारिफ बखत, अर्थात् क्या भाग्य का हाल जानते हो ? पगड़ी बाँधने वाला चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति हो उससे अपना भाग्य का हाल पूछे बिना नहीं छोड़ते। बहुत से हिन्दू और मुसलमान भाई तो वहाँ ज्योतिष का काम ही करते हैं। अरबी पत्रों में इन ज्योतिषयों के बड़े-बड़े विज्ञापन निकलते हैं। भाटडों ने मिश्र को घर ही बना लिया हैं।

यहाँ मैंने एक सप्ताह प्रचार किया फिर इसकन्द्रिया को चल दिया। नौ दिन की यात्रा के बाद इसकन्द्रिया पहुँच गया।

इसकन्द्रिया बहुत बड़ी बंदरगाह है, जो कि समुद्र के किनारे पर ही है। यह नगर भी काहिरा की टक्कर का है। गर्मी की ऋतु में मलिक फव्वाद और मिश्र की गवर्नमेण्ट के सब लोग यहाँ आ जाते हैं। एक बार मैं सैर करते-करते शहर से बाहर निकल गया और समुद्र के तट पर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। इतने में कई मोटर साइकिल पास से गुजरे। उनके पीछे बड़ी आलीशान मोटरें थी। एक मोटर में से किसी ने मेरी ओर उंगली का संकेत किया और मोटर खड़ी हो गई। इसके साथ ही शेष मोटरें भी खड़ी हो गई। मैंने अनुमान किया कि कहीं ये मलिक फव्वाद का युवराज समूअल अमीर फाररूक न हो, क्योंकि मैंने उसके कुछ चित्र अरबी पत्रों में और पुस्तकों में देखे थे। इस बात का मुझे ज्ञान न था कि मैंने पगड़ी बाँधी हुई है। उसने मेरे पास आते ही मेरे आगे अपना हाथ बढ़ा दिया और बोला, अन्ता तारफ बखत ? क्या तुम भाग्य का हाल बता सकते हो ? मैंने जवाब दिया कि परमात्मा के सिवाय कोई भी भाग्य का हाल नहीं जान सकता। अभी में कुछ और भी कहना ही चाहता था कि उसकी बहिन भी मोटर से उतर कर आ गई और उसने भी वहीं प्रश्न किया। अब मैंने उन्हें थोड़ा सा उपदेश

दिया। इसका उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे मुझे अपने साथ घर ले गए। घर में ले जाकर मलिक फव्वाद, रानी और शाही खानदान के सब मनुष्यों से मेरा परिचय करा दिया।

मैं इसकन्द्रिया में दो मास तक शाही महल में ही रहा। यहाँ मैंने हिजबुल्लाह का प्रचार किया। मुझे मिश्री हकूमत में वैदिक धर्म प्रचार की पूरी आज्ञा मिल गई थी। मुझे कोई रोक न सकता था।

दो मास इसकन्द्रिया में प्रचार करके मैं अल काहिरा लौट गया, क्योंकि जलालातलमलिक फव्वाद भी वापिस काहिरा आ गये थे। एक मास तक यहाँ भी जलालातलमलिक के पास ठहरा। मलिक फव्वाद ने हिन्दू धर्म की पुस्तकों और सिद्धान्तों के विषय में बहुत दिलचस्पी दिखाई। महात्मा गाँधी के विषय में भी कई बातें पूछी।

एक बार उसकी रानी साहिबा ने मुझसे एक तावीज बनवाया (पहले ही कह चुका हूँ कि तावीजों में गायत्री मंत्र लिखा करता था)। संयोग से उसकी हार्दिक इच्छा पूर्ण हो गई। बस फिर क्या था सब मुझे मानने लगे। इस कारण से मुझे हिजबुल्लाह के प्रचार में काफी सहायता मिली। कई एक पत्रों के एडीटर और मिश्र के अमीर मेरे पास आने लगे और कहते कि आप बादशाह से हमारी सिफारिश कर देंगे तो हम आपके हिजबुल्लाह के मेम्बर हो जायेंगे। मैंने यह समाचार मलिक फव्वाद को सुनाया तो वह हँस पड़े।

एक बार बादशाह की लड़की बीमार थी। रानी ने मुझसे कहा कि ईश्वर से प्रार्थना करो कि यह अच्छी हो जावे। दुर्भाग्य से उसका देहान्त हो गया। अब तो रानी मुझ पर क्रुद्ध होने लगी कि आपने प्रार्थना नहीं की। मैंने उनसे पूछा कि आज तक जितने बादशाह मर चुके, उनको किसने रोका ? क्या आप बैठी रहोगी ? सभी को एक दिन जाना है। कोई आज कोई कल। मेरी बात उनकी समझ में आ गई। अब तो सारे खानदान में मेरे वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की चर्चा छिड़ी रहती थी। हिजबुल्लाह पर अरबी पत्रों में बहुत से लेख निकाले। इधर मैं भी जनता में हिजबुल्लाह का प्रचार कर रहा था।

पोर्टसईद को प्रस्थान

काहिरा में प्रचार करने के बाद मैंने पोर्टसईद की ओर मुँह फेरा। तीन दिन चलने के बाद दसूक आया। यहाँ इब्राहीम दसूकी की कब्र हैं, जहाँ दर्शकों का मेला लगा रहता है। कब्र के सामने यहाँ भी वही

दृश्य दिखाई देता है। लोग कब्रों के सामने हाथ फैलाते हैं और मुरादें माँगते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें जड़ों की पूजा के गढ़े से निकाल कर वैदिक धर्म की शरण में ले आवे।

दसूक के पास ही मनसूरा में किसी समय फ्राँसीयों का शासन रह चुका है। वहाँ अभी तक फ्राँसियों का बनाया हुआ शाही महल खड़ा है। इसके किवाड़ों पर फ्राँस की भाषा में उस बादशाह का नाम और सन् आदि लिखे हुए हैं। मैं यहाँ बारह दिन तक प्रचार करता रहा। इसके पश्चात् पंद्रह दिन तक चलने के बाद पोर्टसईद पहुँच गया।

पोर्ट सईद बहुत बड़ी बंदरगाह है। यहाँ पर यूरोप आने जाने–वाले जहाज खड़े होते हैं। जब जहाज पोर्टसईद से स्वेज तक आता–जाता है तो उसे नहर के अंदर बहुत धीरे–धीरे चलना पड़ता है। इतना धीरे की नहर के किनारों पर चलने वाले जहाज में बैठे हुए किसी भी व्यक्ति के साथ भली–भाँति बातचीत कर सकते है। जब महात्मा गाँधी गोलमेज कान्फ्रेंन्स के अवसर पर लंदन जा रहे थे। यहाँ भीड़ का कोई ठिकाना न था। ''महात्मा गाँधी की जय'' के नारे लगाये जाते थे। जहाज जब पोर्टसईद पर पहुँचा तो केवल तैंतीस मनुष्यों को अन्दर आने की आज्ञा दी गई। मुस्तफा तहास पाशा, जो कि मिश्र का एक बड़ा लीडर है और सादजगलोल पार्टी से सम्बन्ध रखता है, इन लोगों में था और साठ–सत्तर बकरियाँ महात्मा जी के दूध पीने के लिए उपहार स्वरूप लाया था। एक थैली भी महात्मा जी को पेश की गई।

मैंने एक मास यहाँ रहकर वैदिक धर्म का प्रचार किया और जीमयतुल हिजबुल्लाह स्थापित की। यहाँ पर सिन्धी लोग तिजारत करते हैं। यह बन्दरगाह यूरोप जाने का रास्ता है, इसलिए अंग्रेज काफी संख्या में दिखाई देते हैं।

इससे पहले कि फिलिस्तीन की यात्रा का वर्णन आरम्भ करूँगा मिश्र पर एक तौटती दृष्टि डाल लूं। यहाँ की सड़कें अतीव आलीशान है। मोटरों की यातायात लगी रहती है। मोटर, रेलतार, टेलीफोन का सम्बन्ध सारी मिश्री हकुमत में हैं। प्रत्येक गांव और नगर में नील नदी के पानी से खेतीबाड़ी होती है। मिश्र की पृथ्वी अति उपजाऊ होने से कई प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं।

मिश्र वाले अपनी लड़कियों का विवाह बिना पन्द्रह–बीस पौंड मेहर लिये नहीं होने देते, परन्तु मन माँगा मेहर देने पर भी दुल्हा का

घर बस जाए, इसमें संशय है। प्रायः दो एक मास के भीतर ही दुल्हन तलाक देकर वापिस चली जाती है। मेरे एक मुसलमान लाहौरी मित्र थे, जो काहिरा में खिलौनों का व्यापार करते थे। इन्होंने बीस पौंड मेहर देकर एक हजाम की बेटी से विवाह कर लिया था, परन्तु दो ही मास में तलाक की नौबत आ गई।

पोर्टसईद के सामने पोर्ट फव्वाद है, परन्तु नहर स्वेज उसको जुदा करती हैं, परन्तु यहाँ से पोर्ट फव्वाद पहुंचाने के लिए नहर में सारा दिन सरकारी नावें आया-जाया करती हैं, जो यात्रियों को पार पहुँचा देती हैं। मैं भी नहर को पार करके पोर्ट फव्वाद पहुँच गया और वहाँ पर एक सप्ताह तक प्रचार किया। वहाँ से समुद्र के किनारे-किनारे चल कर दस दिन में वापिस अलअरीश जा पहुँचा। यहाँ पुराने मित्रों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। दस दिन तक प्रचार किया और यहाँ से चलकर एक दिन में रफा जा पहुँचा। मिश्र की हकूमत की हद यहाँ तक हैं। यहाँ से फिलस्तीन की पृथ्वी आरम्भ हो जाती है।

दूसरा परिच्छेद एक वर्ष दो मास और बीस दिन की यात्रा के साथ समाप्त होता है। अब तीसरे परिच्छेद फिलस्तीन में वैदिक धर्म के प्रचार का वर्णन करेंगे।

❑❑

तीसरा परिच्छेद

फिलस्तीन

अलअरीश से रफा एक ही दिन में जा पहुँचा। किसी ने पासपोर्ट न पूछा। नगर रफा से फिलस्तीन का देश आरम्भ हो जाता है। यहाँ से दो दिन में गजा जा पहुँचा।

गजा समुद्र के किनारे पर ही है। अलअरीश से पैदल तीन दिन की यात्रा हैं। वहाँ के अरबी बताते हैं कि यहाँ तुर्की, सिक्ख व राजपूत सेनाओं की तलवार की लड़ाई हुई थी। दोनों वीर जातियों का यहाँ कड़ा मुकाबला हुआ था। तुर्की सेना की बुरी तरह हार हुई। इसे पीछे हटते–हटते कुछ दिनों में सारा फिलस्तीन छोड़ देना पड़ा। उस दिन से फिलस्तीन का इलाका अंग्रेजों और यहूदियों के हाथ आ गया।

मैंने यहाँ एक सप्ताह तक प्रचार किया। फिर समुद्र के किनारे–किनारे चलता रहा। इस मार्ग पर बहुत छोटे–छोटे देहात आते हैं। इनमें प्रचार करता हुआ दो सप्ताह में याफा जा पहुँचा। फिलस्तीनी–अरबी, मिश्री अरबी से कुछ भिन्न हैं। इन प्रातों में से गुजरते हुए मैंने यह अरबी सीख ली थी। मेरा अनुभव बताता है कि हर बारह मील की दूरी पर बोली में थोड़ा भेद हो जाता है। पैदल चलने वाला बोली के परिवर्तनों को भली–भाँति ग्रहण कर लेता हैं, परन्तु भारतवर्ष से कितना भी बड़ा विद्वान् जहाज में बैठ कर एक दम अरब पहुंच जाये, इन इलाकों के जैसी अरबी नहीं बोल सकता। साधारण बोलचाल की अरबी सीखने का तो यही एकमात्र साधन है कि वह इन देशों में पैदल यात्रा करे। कराची से मक्का तक पैदल जाने में वह भली प्रकार अरबी सीख लेगा। दूसरा साधन अरबी सीखने का यह है कि कुछ चिर तक किसी अरबी देश में निवास करे। तीसरा सुन्दर सा धन है कि किसी अरबी स्त्री से विवाह कर ले। अरब में जहाँ–जहाँ भी हिन्दू बसे हुए हैं, उन्होंने अरबी स्त्रियों को शुद्ध करके विवाह कर लिया है, जिससे उन्हें वहाँ की बोली आ गई है।

यहाँ अरबों के अतिरिक्त यहूदी भी बसे हुए हैं। यह एक व्यवसायी जाति है। इनके पास पैसा खूब है और सारा व्यवसाय इनके हाथ में

हैं। यहूदियों और मुसलमानों के अतिरिक्त यहाँ अरब ईसाई भी हैं। मेरे प्रचार में इन तीनों जातियों के लोग सम्मिलित होते थे। मैंने यहाँ दो सप्ताह रहकर वैदिक धर्म का प्रचार किया, जिसके कारण बहुत से प्रेमी सज्जन वैदिक धर्म के मानने वाले निकल आये। इसके बाद में दो दिन में रमला पहुँच गया। यह भी एक ऐतिहासिक नगर है। यहाँ मैंने एक सप्ताह रहकर प्रचार किया।

बैतुल मुकद्दस (येरूशलम)

बैतुल मुकद्दस देखने की मेरी बहुत देर से इच्छा थी। यह वह स्थान है जहाँ हजरत ईसा को सूली पर टाँगा गया था। यह एक प्राचीन नगर है और पहाड़ी पर बसा हुआ है। यहाँ अरब ईसाई बहुत हैं। एक बड़ा गिरजाघर है, जिसे कनीसा तल कियामा कहते हैं। इस गिरजे में हजरत ईसा के सात बड़े चित्र लगे हुए हैं विविध देशों से यात्री लोग यहाँ आते हैं और ईसाई लोगों का यह सबसे बड़ा तीर्थ है। यूरोप के समीप होने से इटली, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मन और अफ्रीका से ईसाई लोग अधिक आते है। इस गिरजे में हर धर्म के व्यक्ति को अंदर आने की आज्ञा है।

यद्यपि यह तीर्थ ईसाइयों का हैं, परन्तु यहूदी भी बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। यहाँ यहूदियों की एक यूनिवर्सिटी है। इसमें यहूदी, मुसलमान, ईसाई सब शिक्षा पाते हैं। मुसलमानों का पहला किबला, जिसकी ओर मुंह करके वे नमाज़ पढ़ा करते थे, यहाँ ही था, परन्तु अब खुदा ने अपना किबला यहाँ से उठा लिया है और मक्का में बना लिया है, जिस कारण मुसलमान मक्का की ओर मुंह कर नुमाज पढ़ते हैं।

यहाँ एक आलीशान मस्जिद है, जिसे मस्जिद अल अकसा कहते हैं। यह अतीव सुन्दर मस्जिद है और इसके सामने सखरातल्ला यानी खुदा का पत्थर है। यह क्या हैं? एक छोटी सी पहाड़ी है, जिसका एक कोना एक ओर को बढ़ा हुआ है। इस पहाड़ी पर एक छोटा-सा सुन्दर मकान बना हुआ है, जिसमें मुसलमानों का पहला काबा है और जिसकी ओर मुंह करके ये नमाज़ पढ़ते थे। पहाड़ी का जो कोना मकान से बाहर की ओर निकला हुआ है, वह पृथ्वी से थोड़ा ऊँचा है। अब इस कोने के नीचे से मिट्टी निकाल कर बड़ा तहखाना बना दिया है। वहाँ वह मशहूर है कि यह कोना सखरातल्लाह (अल्लाह

मियाँ का पत्थर) अपने आप आसमान से लटका हुआ है। तहखाना में इतना अंधेरा है कि दिन को भी मोमबती जलाकर अल्लाह मियां की करामाते दिखाते हैं। हिन्दुस्तानी मुसलमान भाइयों को तो यह कौतुक बहुत ही अच्छा लगता है। किसी समय में जब लोग सरल और भोले-भाले होते होंगे तो चालाक लोग उनको कौतुक के नाम पर ठगते होंगे, परन्तु साइंस के इस युग में उसे कौन कौतुक कहता है, अब तो वहाँ के अरब पुजारी भी कहते हैं कि यह तहखाना है। यही आसमान से अपने आप लटका हुआ नहीं है।

हर धर्म का व्यक्ति भीतर जा सकता है। इसके लिए वहाँ के मुफ्ती अमीन आफन्दी अलहसैन से दो आने का टिकट लेना पड़ता है। मैंने अंग्रेज लोगों को भी भीतर जाते देखा है। अब तो वहाँ के पुजारी लोग दर्शकों से बूट भी नहीं उतरवाते, बल्कि बूटों के ऊपर चमड़े का एक और बूट, जिसे अरबी में 'खुफ' कहते हैं, पहना देते हैं, जिससे वे निधड़क भीतर जाकर अपने कैमरों से फोटो लिया करते हैं। जब वे सखरातल्लाह (अल्लामियाँ के पत्थर) को देखते हैं तो उनको विश्वास नहीं होता और वह जोर-जोर से हँसने लगते हैं।

सखरातल्लाह और मस्जिद अल अकसा एक शानदार इमारत में हैं, जिसे हरम शरीफ कहते हैं। हरम शरीफ में सखरातल्लाह के सामने एक बड़ी दीवार के ऊपर एक पुल बना हुआ है, जिसे पुल सिरात कहते हैं। यह मशहूर है कि कयामत के रोज अल्लाहमियाँ इस पुल पर बैठकर इन्साफ करेगा। उसके इन्साफ का फैंसला ये होगा कि, जो इस पुल पर से गुजर जाएगा, वह सीधा बहिश्त में जाएगा और जो गिर पड़ेगा वह दोजख में जाएगा, जो कि दीवार के पिछली ओर है।

येरूसलम पहाड़ी इलाका है। गर्मी की ऋतु में यहाँ अंगूर पैदा होते हैं। जैतून के पेड़ बहुत हैं। फिलिस्तीन के पढ़े-लिखे स्त्री व पुरुषों का पहनावा अंग्रेजी है। अनपढ़ सिर पर तिकोनी रूमाल और उस पर तीन रस्सियाँ बांधते हैं। कोट की तरह एक लम्बा कुर्ता भी पहनते हैं। यहाँ के लोगों का खाना भारतवर्ष जैसा है। पेट भरकर खजूर नहीं खाते।

हरम शरीफ के अन्दर मस्जिद अलअकसा के समीप एक स्थान बना हुआ है। जहाँ से हजरत मुहम्मद साहब मेराज जाते समय बुराक पर सवार हुए थे। मेराज कहीं से हो, परन्तु बैतुल मुकद्दस में मेराज की

यादगार में एक निशानी बनी हुई है, याने हजरत मुहम्मद साहब अल्लामियाँ के हवाई जहाज पर सवार होकर अल्लामियाँ के पास गये थे, परन्तु आज आर्यसमाज की सुझाई हुई आपत्तियों के कारण अहमदी साहियान मेराज के अर्थ मुसलमानों जैसे नहीं करते। मेराज के अर्थ खाब के पास जाना करने लग गये हैं।

बैतुलमुकद्दस से लगभग चौबीस मील की दूरी पर हजरत इब्राहिम की जियारत है। सबसे पहले कुर्बानी की रियाज हजरत इब्राहीम ने चलाई थी। तीर्थ क्या हैं एक ग्राम है, जो इब्राहीम के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर मैंने दो सप्ताह तक प्रचार किया।

यहाँ से मैं फिर बैतुल मुकद्दस लौट आया और हजरत मूसा की जियारत को, जो कि जबल तूर पर है, देखने चला गया। कहते हैं कि हजरत मूसा दूर से आग जलती देखकर यहाँ आये तो अल्लामियाँ ने उनसे फर्माया कि ऐ मूसा, यह आग नहीं हैं मेरा नूर है। अल्लाहमियाँ और मूसा को बातें करने का यही मुतबर्रिक स्थान हैं।

इस पहाड़ी के पास एक कुआँ है, जिस दिन मैं जबलतूर पर गया तो मुझे वहीं रात पड़ गई। बयाबान जंगल था। रात को मैंने कुएं में से जल निकाल कर अपना खाना बनाया। आग भी जलाई, क्योंकि डर था कोई जंगली जानवर न हमला कर दे। रात को कोई पथिक पास से गुजर रहा था। उसने मेरी आग जलती देखी तो मेरे पास आने लगा। अभी पास नहीं आया था कि मुझे दिल्लगी सूझी, मैंने चिल्लाकर कहा कि ऐ मुसाफिर मेरे पास मत आना। यह आग नहीं है, अल्लाह का नूर है। यह सुनते ही वह सिर पर पाँव रख कर भागा। मैंने उसे भागते देखकर आवाजें दी, परन्तु उसने पीछे मुड़कर भी न देखा। दूसरे दिन जब मैं बैतुल मुकद्दस पहुँचा तो लोगों की जबानी मालूम हुआ कि एक आदमी यह कह रहा है कि उसने कल रात इस पहाड़ी पर खुदा से बातें की हैं और एक ही दिन में उसके कई मुरीद बन गये।

बैतुल मुकद्दस में हजरत का गिरजा घर भी है जहाँ मरियम की कई प्रकार की तस्वीरें लगी हुई हैं। यह सखरातल्लाह की भाँति ही मुतबरिक गिरजा घर है। दिन को वहाँ अंधेरा रहता है और मोमबत्ती की रोशनी में अन्दर जाना पड़ता है।

फिलस्तीन का वर्णन करते हुए उचित प्रतीत होता है कि उस कान्फ्रेंस का भी कुछ परिचय करा दूं, जो कि मौलाना शौकत अली

साहब ने वहाँ सारे संसार के भाइयों को बुलाने के लिए की थी। मौलाना शौकत अली व जाहिदअली, सर इकबाल, मौलाना शफी दाउदी साहब पटना, मौलाना गुलाम रसूल मेहर एडीटर इनकिलाब लन्दन की गोलमेज कान्फ्रैंस से होकर यहाँ आये थे। मद्रास यूनिवर्सिटी में अरबी के प्रोफेसर रऊफ पाशा भी आये थे। सीलोन (लंका) खिलाफत कमेटी ने अपने व्यय पर बैतुलमुकद्दस भेजा था वहाँ पर मौलानाशौकत अली और अन्य साहिबान के उर्दू व्याख्यानों को अरबी में तर्जुमा कर के वहाँ के अरबों को समझायें। ये सब सज्जन कान्फ्रैंस से एक दिन पहले लैलातल मेराज के दिन बैतुलमुकद्दस के स्टेशन पर जा उतरे। वहाँ जितने हिन्दुस्तानी खयात (दर्जी) थे, सब इनके स्वागत के लिए स्टेशन पर गये। इन स्वागत करने वालों में मैं क्यों सम्मिलित हुआ, यह भी एक मनोरंजक वार्ता है।

फिलस्तीन के अन्दर मौलाना शौकतअली और अन्य सज्जनों के विपक्ष में अरबों की एक शक्तिशाली पार्टी थी, जो इस कान्फ्रैंस में अंग्रेजों की कान्फ्रैंस कहती थी। इस पार्टी के बहुत मैम्बर मुझसे परिचित थे। कान्फ्रैंस होने वाली थी और मुफ्ती अमीन आफन्दी अलहुसैनी इसका प्रबन्ध कर रहे थे। मुफ्ती साहब ने मुझसे कहा कि विपक्षी पार्टी के मैम्बरों से हमारा समझौता करा दो। मैंने हरचन्द प्रयत्न किया, परन्तु समझौते की कोई सूरत न दिखाई दी।

मैं मुफ्ती साहब के कहने पर उनके साथ स्टेशन पर मौलाना शौकत अली से मिलने गया और हम उन्हें स्टेशन से मस्जिदअल अकसा में ले आये। यह लैलातलमेराज का दिन था और फिलस्तीन के मुसलमान भी लैलातलमेराज मनाने के लिए मस्जिद में आये हुए थे। सबसे पहले कुछ अरबों के व्याख्यान हुए। अब मौलाना शौकत अली को तकरीर करने के लिए कहा गया, परन्तु इन्होंने अपनी बलासर इकबाल के सिर मढ़ दी। सर इकबाल अंग्रेजी में बोलने लगे। एक आध मिनट ही हुआ होगा कि अरबों की ओर से शोर मचा कि इस पवित्र स्थान में अंग्रेजी की तकरीर न होनी चाहिये। सर इकबाल ठिठके, परन्तु सम्हल कर उर्दू में बोलने लगे। लोगों ने फिर शोर मचाया तरजिम, तरजिम, याने इसका तर्जुमा करो। प्रोफैसर रऊफ पाशा साहब की, जो शामत आई तो ये उठकर सर इकबाल की तकरीर को अरबी में समझाने लगे। इन्होंने दो मिनट तक अरबी में उल्ट-पुल्ट

बाजियाँ लगाई, परन्तु इसके बाद काँपते हुए बैठ गये। सर इकबाल पहले ही चुप हो चुके थे। खैर, इस समय असर (चार बजे शाम) की नमाज़ का समय हो गया था, इसलिए तकरीरें समाप्त हुई और लोग नमाज़ पढ़ने लगे।

दूसरे दिन कान्फ्रेंस होनी थी और बड़े मौलाना वा सर इकबाल को अरबी आती न थी। सभा में बोलना तो एक और रहा ये लोग अरबों को, जो इनके घर पर मिलने के लिए आते थे, अपना आशय तक भी न समझा सकते थे। मुफ्ती साहब ने मुझे मौलाना साहब की बातचीत का तर्जुमा करने पर लगा दिया।

एक दिन मैं एक काम से जरा बाहर चला गया। जब खाना तैयार हो गया तो अरब लोगों ने मौलाना साहब और उनके साथियों का आकर कहा—"यल्लाह", अर्थात् चलिये। मौलाना ने झट उत्तर दिया "या अल्लाह" याने "हे ईश्वर"। अरब लोगों ने फिर कहा चलो, परन्तु मौलाना हर बार उत्तर देते "या अल्लाह"। दस पंद्रह मिनट तक यह कौतुक होता रहा। इतने में मैं भी आ गया और मौलाना को खाना तैयार होने की खबर सुनाई।

दूसरे दिन मद्रिसा कुलया रोजा तल मआरिफ़, जहाँ इनकी कान्फ्रैंस आरम्भ होती थी, विपक्षी पार्टी ने ठीक उसके सामने अपने खेमे गाड़ दिये और हजारों की संख्या में एक अलग कान्फ्रैंस करनी आरम्भ की। मौलाना साहब ने अवसर नाजुक जानकर अपनी कान्फ्रैंस में केवल डैलीगिटों (आमंत्रित सज्जनों) को सम्मिलित होने की आज्ञा दी, जिनकी संख्या डेढ़ सौ से अधिक न थी। इधर कान्फ्रैंस आरम्भ हुई, उधर सर इकबाल, वा गुलाम रसूल मेहर की मौलाना साहब से खट–पट हो गई और ये दोनों महानुभाव मौलाना का साथ छोड़कर एक अरबी लोकान्दा (होटल) में जा ठहरे।

कान्फ्रेंस के दिनों में रोज रात के समय फिलस्तीन के हाई कमिश्नर की मोटर मौलाना साहब को बुलाने के लिए आती थी और उनका डिनर (खाना) भी प्रायः वहीं होता था। यहाँ, जो सम्मति रात के समय पास ही जाती उसी के अनुसार दिन को कान्फ्रेंस में कार्य होता था। हाई कमिश्नर के साथ मौलाना के इन आवश्यक मशवरों में कभी–कभी सर इकबाल और शफी दाऊदी आदि भी सम्मिलित होते थे।

रऊफ पाशा इन लोगों से कुछ भिन्न मिट्टी के आदमी थे। वे शरीर

पर स्वच्छ खद्दर धारण करते थे और मन के भी साफ थे। मौलाना की वे कड़ी आलोचना करते थे और कान्फ्रेंस में कई बार इनके कारण मौलाना को नीचा देखना पड़ा। खैर, कान्फ्रेंस तो खुदा–खुदा कर के समाप्त हो गई, परन्तु खिलाफत कमेटी न स्थापित हो सकी।

जिन दिनों कान्फ्रेंस हो रही थी तो अरबी समाचार पत्र अपने पत्रों के ऊपर "अल हिन्दी आये" इस प्रकार के शीर्षक दे देते थे। इन्हें पढ़ते ही मौलाना को एक प्रकार का कष्ट सा होने लगता, क्योंकि भारतवर्ष में तो ये लोग कहा करते थे कि अरब हमारा, तुर्की हमारा, ईरान हमारा, अफगानिस्तान हमारा, परन्तु यहाँ मालूम हुआ कि हिन्दी मुसलमानों का कहीं भी सम्मान नहीं है। सर इकबाल ने तो दुःखी होकर एक नजम भी बनाई थी "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा", जिससे अब हम भली–भाँति परिचित है। मौलाना साहब अरब के मुसलमानों को अंग्रेजों के साथ मिलकर रहने को कहते थे, वहाँ के मुसलमान अंग्रेजों से मिल गये, जिसके कारण अंग्रेजों ने फिलस्तीन का बटवारा कर दिया।

फिलस्तीन में हिन्दुओं को तिजारत करने की आज्ञा मिली हुई है। ढाई मास तक प्रचार करके मैंने यहाँ जमीयतुल हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) स्थापित कर दी।

याफा बंदरगाह व तल अबीब को प्रस्थान

इसके पश्चात् मैं वापिस बंदरगाह आ गया। याफा के साथ एक नया गांव बस हुआ है, जिसे तल अबीब कहते हैं। इसको लंदन के नमूने पर बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें बसने वाले अधिकतर यहूदी लोग है, जो कि तिजारत पेशा है।

यहाँ की नारँगी बहुत ही प्रसिद्ध है और बैतुलमुकद्दस से लेकर याफा तक पृथ्वी का एक इंच भी नारँगी के पेड़ों से खाली नहीं दिखाई देता। फलतः यहाँ नारँगी की बड़ी भारी तिजारत होती है। नारँगियों के जहाज बहुत संख्या में भर–भर कर यूरोप जाते हैं। लैमोनेड के सदृश नारँगी के रस की बोतलें भरी जाती हैं। बैतुलमुकद्दस से लेकर याफा, हैफा तक कोई स्थान इन पेड़ों से खाली नजर नहीं आता।

सप्ताह के किस दिन छुट्टी होनी चाहिए इस विषय में संसार की विविध जातियों के विविध दिन नियत हैं। यहाँ तलअबीब में शनिवार के दिन छुट्टी होती है। इस दिन यहूदी कोई कार्य नहीं करते। शनि के

दिन सवेरे ही समुद्र के तट पर चले जाते हैं और सैर आदि करके दोपहर को लौट आते है। इस दिन किसी घर या होटल में चूल्हा नहीं जलता और बासी रोटियों का भोजन होता है।

शनिवार को मैंने एक विचित्र बात देखी। जब मैं बाजार में से गुजर रहा था तो एक बाजार के चौक पर छोटी–छोटी लड़कियाँ खड़ी थी। इन्होंने मुझे देखते ही मेरे कंधे पर एक रेशमी कपड़े की परची टाँक दी और मुझसे दो पैसे माँगे। पहले तो मैं इसे दिल्लगी समझा, परन्तु परची को देखा तो उस पर अरबी अक्षरों में ''यहूदी धर्म की जय'' लिखा हुआ था। वे लड़कियाँ बाजार में हर आने जाने वाले के कपड़ों पर ये परचियाँ लगा रही थी। दो पैसे मैंने उनकी भेंट किये और आगे चलकर वह परची उतार दी। जब बाजार के अगले चौक पर पहुंचा तो और लड़कियों ने मेरे कपड़ों में फिर वही परची लगा दी। यहाँ भी दो पैसे भेंट करने पड़े। मैंने परची लगी रहने दी और निधड़क आगे चल दिया। अगले चौकों में भी लड़कियाँ खड़ी हुई मिली, परन्तु परची देखकर किसी ने कुछ न कहा। हाँ, जो कोई बगैर ''पासपोर्ट'' लिये बाजार से गुजरता है उनसे दो पैसे का टैक्स अवश्य बसूल किया जाता है, चाहे वह किसी धर्म का हो। इस प्रकार एकत्रित किये धन से निर्धन, अन्धे, लंगड़े, अपाहिज और बेरोजगारों का पोषण होता है।

यहाँ मैं एक यहूदी वकील के यहाँ ठहरा था, जो कि अपनी जाति का एक बड़ा लीडर था। वह मेरा बड़ा मित्र था। मैंने यहाँ दो सप्ताह तक वैदिक धर्म का प्रचार किया और फिर वापिस बैतुल मुकद्दस चला गया।

बैतुल मुकद्दस के पास ही एक स्थान है, जिसे तवर्रिया कहते हैं यहाँ तालाब के सदृश एक बड़ी झील है, जिसमें जल स्वभाविक तौर पर पृथ्वी से निकलता रहता है और एक ओर से नहर के सदृश है, जिसमें पानी बड़े वेग से बहता है। यह नहर यहाँ से निकलकर शरकीअल अरदन की ओर चली गई है। यह स्थान फिलस्तीन की सीमा पर है। मैं यहाँ कुछ चिर विश्वक करके दमिश्क (शाम) को चला गया।

यहाँ इस पुस्तक का तृतीय परिच्छेद पाँच मास इक्कीस दिन की यात्रा के साथ समाप्त होता है। चौथे परिच्छेद में शाम और तुर्की के वृत्तान्त लिखेंगे।

□□

चौथा परिच्छेद

शाम और तुर्की

बैरूत को प्रस्थान

तबर्रिया की झील के ठीक सामने का पहाड़ शाम की हकूमत में है। इस पहाड़ की चोटी पर एक गांव बसा हुआ है, जिसे कफरअल दारिब कहते हैं। मैं हैरान था कि बिना पासपोर्ट के सीमा को कैसे पार किया जाये, परन्तु अन्त में परमात्मा पर भरोसा रखकर चल ही पड़ा।

मैं झील के किनारे–किनारे जा रहा था। कहीं–कहीं मार्ग में थोड़ा–थोड़ा पानी भी आ जाता। आगे जाकर एक स्थान में यह छोटा–छोटा पानी नहर बन गया। मैं इसे धीरे–धीरे लाँघने लगा। इस नहर को पार कर मैं बाहर निकला ही था कि वर्षा होने लगी। वर्षा में से मैंने इधर–उधर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि सामने पुलिस की चौकी है, एक सिपाही पहरा भी दे रहा था। इतने में जोर की वर्षा आई और वह सिपाही भाग कर सायबान के नीचे पहुँच गया। मैंने इसे सुअवसर समझा और दो फर्लांग का चक्कर काट कर जाने लगा। न जाने कैसे सिपाही ने मुझे देख लिया। आवाज आई "ओ मुसाफिर, इधर आ, पासपोर्ट दिखा कर जा।" मूसलाधार पानी पड़ रहा था। आवाज वैसे भी कम सुनाई देती थी। मैंने उसको उत्तर न देने में ही भलाई समझी। वह बहुत चिल्लाता रहा, परन्तु छप्पर से बाहर निकलने की उसकी भी हिम्मत न पड़ी। मैंने उसकी जरा भी परवाह न की और तेजी से दूर निकल गया।

चलते–चलते अन्त में पहाड़ी पर चढ़कर कफर अल–हारिब जा पहुँचा। अब मैं शाम की सीमा के अन्दर प्रवेश कर चुका था और वर्षा भी बन्द हो चुकी थी, परन्तु दुर्भाग्य से यहाँ भी एक सिपाही मिल गया। उसने मुझसे पासपोर्ट के लिए पूछा, परन्तु मैं गूंगा बन गया। उसने कई बार पूछने का प्रयत्न किया, परन्तु मैंने एक उत्तर न दिया। दो–तीन दिन वह मुझे डबल रोटी और जैतून का तेल खिलाता रहा, परन्तु मेरी जबान न ठीक हुई। जैतुन का तेल यहाँ घी का दर्जा रखता है। अब मुझे यही डर था कि ईश्वर भला करे, कहीं मुँह से कोई शब्द न निकल जाये, परन्तु दो दिन और दो रात बहुत कॉफी होते हैं। लोगों

ने उस सिपाही से कहा कि तुम्हारे ऊपर हराम है, इस गूंगे को छोड़ दो। सिपाही ने मुझसे पूछा—कहाँ जाओगे। मैंने दमिश्क की ओर संकेत किया और थोड़ा सा बुड़बुड़ाया। इससे वह मेरा मतलब समझ गया और मुझे छोड़ दिया।

मैं यहाँ से निकला। मार्ग में कई छोटे-छोटे गांव आये, जाड़े के दिन थे। रात और दिन को जोर से सर्दी पड़ती। कानों में सन्नाटा छा जाता था। मैं सर्दी से बचने के लिए कान और मुँह कंबल में लपेट लेता था और सफर करता रहता था। तबर्रिया से कंतरह पहुँचने में मुझे बारह दिन लगे। वहाँ से दमिश्क समीप था, परन्तु जाड़े की कोई सीमा न थी और बर्फ पड़ रही थी, इसलिए मैंने इस समय दमिश्क जाना पसन्द न किया और बैरूत की ओर चल पड़ा, क्योंकि उस स्थान में समुद्र निकट होने की वजह से बर्फ नहीं पड़ती।

कंतरह से तीन मील की दूरी पर एक छोटा-सा गांव मिला। रात्रि हो चुकी थी। मैंने वहाँ ठहरना उचित समझा। एक मनुष्य मुझे अपने घर ले गया। रात को जग कपड़े उतार कर सोने लगा तो उसने बाहर का किवाड़ बन्द करके अन्दर से ताला लगा दिया। उसकी इस हरकत से मुझे कुछ संदेह हुआ और मैं सावधान होकर इधर-उधर देखने लगा। उसी मकान में उसकी स्त्री सो रही थी। आंगन में एक गधा बंधा हुआ था। अब उस मनुष्य ने मेरे कपड़े टटोलने आरम्भ किये। मैं उसका आशय पहले ही जान चुका था, इसलिए बटुए को मैंने बचाकर कम्बल के नीचे छिपा दिया था। खंजर उसने हाथ में पकड़ा हुआ था। यदि रुपया उसके हाथ लग जाता तो मेरी जान की खैर न थी। जब वस्त्र आदि टटोलने के बाद उसे कुछ प्राप्त न हुआ तो मैं निडर होकर सो गया और दूसरे दिन जब उसके घर पड़ौसी आये तो मैं उठा वस्त्र पहनने आरम्भ कर दिये। बटुआ भी उसके सामने ही जेब में डाल लिया।

जब उसकी दृष्टि बटुए पर पड़ी तो वह मन में बड़ा विस्मित हुआ, परन्तु पड़ौसियों के सामने कुछ न कर सकता था। मैंने अपना सामान उठा लिया और चलने लगा तो उसने बहुत आग्रह किया कि एक दिन और ठहर जाओ । मैंने उत्तर दिया कि जब मेरे पास काफी धन होगा तो फिर आऊंगा। इतना कहकर मैं वहाँ से चल पड़ा। नगर से बाहर थोड़ी दूर तक वह मेरे पीछे-पीछे आया, परन्तु नगर के बाहर निकल कर मैंने बन्दूक में कारतूस भर लिया और एक बार मुड़कर

देखा तो वह ठहर गया। मैंने उससे कहा—मित्र, आओ और उसे अपना बटुआ दिखाया, परन्तु बन्दूक में कारतूस भरने का आशय वह समझ गया था, इसलिए वह जोर–जोर से यह कहता हुआ भागा कि मैं भी डाकू हूँ, परन्तु तुम मेरे भी गुरु, उस्ताद हो। मैंने उसे हर चन्द बुलाया, परन्तु उसने पीछे मुड़ कर भी न देखा।

अब मैंने सैदा की बन्दरगाह की ओर मुँह फेरा। यहाँ मैंने दो सप्ताह ठहर कर प्रचार किया। पाँच दिन के बाद बैरूत जा पहुँचा। यह एक बड़ी बन्दरगाह है, जो बुहेरा रूम के तट पर है। यहाँ यूरोप के जहाज आते–जाते रहते हैं, इसलिए तिजारत खूब होती है। मिश्र की तरह यहाँ छापेखानों की भरमार है जहाँ अरबी के समाचार पत्र और पुस्तकें बड़ी संख्या में छपती हैं। आबादी मुसलमानों से अधिक ईसाइयों की है और शासन फ्राँन्सीसियों का है। बाजार मिश्र के सदृश खूब चौड़े–चौड़े हैं।

मुझे यहाँ से दमिश्क जाना था, परन्तु जाड़े को कोई हद न थी, जो मोटरें दमिश्क से आती थीं उनकी छतें बर्फ से ढकी हुई होती थीं। मैंने यहीं एक मास रह कर प्रचार किया, जिससे यहाँ जमीयतुल हिजबुल्लाह स्थापित हो गई।

बैरूत, बल्कि सारे शाम में फ्राँस का राज्य है, इसलिए स्कूलों में फ्रान्सीसीं भाषा पढ़ाई जाती हैं। कुछ हिन्दू, सिन्धी दुकानदार भी तिजारत करते हैं।

जबल (पहाड़) लिबनान

जबल लिबनान को शाम का कशमीर समझिए। गर्मी के दिनों में शाम और मिश्र के लोग यहाँ पर सैर सपाटे के लिए आते है। जबल लिबनान बहुत बड़ा पहाड़ है। यहाँ पर चालीस हजार की जनसंख्या है, परन्तु ये सबके सब अरब ईसाई हैं। मुसलमान कोई भी नहीं, परन्तु यदि कोई अरब मुसलमान यहाँ से गुजर जाता है तो उसकी अच्छी आवभगत करते हैं। जबल लिबनान के बड़े–बड़े नगरों में बड़ी–बड़ी दीवारों पर मरियम की संगमरमर की मूर्तियाँ खड़ी की हुई हैं।

मैं, जिस समय यहाँ प्रचार कर रहा था तो वे लोग मुझे हिन्दी समझकर महात्मा गाँधी के विषय में बहुत कुछ पूछते थे। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं उसी की जाति का हूँ और आर्य हूँ तो वे बहुत प्रसन्न हुए। मैंने वहाँ दो मास तक वैदिक धर्म का प्रचार किया, जिससे

उन लोगों को वैदिक धर्म से बहुत प्रेम हो गया। सारे जबल लिबनान में स्थान-स्थान पर जमीयतुल हिजबुल्लाह स्थापित हो गई।

जब मैंने पहले-पहले वहाँ अरब ईसाइयों को देखा था तो सबके सब फ्राँसीसी जान पड़े, परन्तु कुछ दिनों बाद मेरा यह भ्रम दूर हो गया। यहाँ अरबी, अंग्रेजी, फ्राँसीसी भाषाओं के स्कूल खुल हुए हैं और निवासी बहुत सभ्य और शिक्षित हैं। जब मैंने उनको बताया कि मैं आर्य हूँ तो उन्होंने मुझसे आर्यों के चार वर्ण यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के विषय में जानना चाहा। मैंने उन्हें इन चारों वर्णों के बनाने की आवश्यकता बताई, जिसे उन्होंने बड़े प्रेम से सुना। फिर उन्होंने आश्रमों के विषय में पूछा। जब मैंने उन्हें बताया कि हमारे यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समयानुसार चार आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में से गुजरना पड़ता हैं तो वे हैरान हुए, क्योंकि उनके यहाँ केवल दो ही आश्रम हैं, एक ब्रह्मचर्य दूसरा गृहस्थ। वे मुझे अपने गिरजाघर में ले गये और उनमें रहने वाले तीस व्यक्तियों को दिखा कर कहा कि इन्होंने साठ वर्ष तक विवाह नहीं किया। ब्रह्मचर्य की ओर उन लोगों की मैंने विशेष रुचि देखा। उन्होंने सारे इलाके जबल लिबनान में ब्रह्मचर्य के विषय पर मुझसे व्याख्यान दिलवाये।

कोट, पतलून, हैट तो ये लोग पहनते हैं, परन्तु अंग्रेजों के सदृश छुरी काँटे से खाना नहीं खाते बल्कि हमारी तरह हाथों से काम लेते हैं। इलाका पहाड़ी है, परन्तु सड़कें अच्छी हैं, इसलिए मोटरें आ जा सकती हैं।

दमिश्क को प्रस्थान

दमिश्क पहुँचने से पहले मुझे तराबल्स की बंदरगाह रास्ते में पड़ी। यहाँ पर एक सप्ताह प्रचार करके पाँच दिन में हमुस पहुँच गया। हमुस मुसलमानों का एक मुतबर्रिक शहर भी है। इसमें मैंने दो सप्ताह तक प्रचार किया। वहाँ से चल कर में पाँच दिन में दमिश्क (शाम) जा पहुँचा। दमिश्क एक बड़ा प्रचीन नगर है। यहाँ जाड़ों में खूब बर्फ पड़ती है और मुसलमानों के नबी जकरियाँ की जियारत है। यह जियारत एक विशाल और सुन्दर मस्जिद में बनी हुई है और अलजामिआ अलउमनी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के बड़े-बड़े बलियों की जियारतें हैं जिनमें से एक का वर्णन अब करूँगा।

दमिश्क से लगती हुई एक पहाड़ी है, जिसमें हाबील और काबील

की जियारतगाह है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि मुसलमानों के बाबा आदम से, जो लड़के–लड़कियाँ उत्पन्न हुए थे उनमें बहिन–भाइयों में विवाह होता था। हाबील और काबील में, जो कि आदम के बेटे थे, विवाह के ऊपर विवाद हो गए। दोनों एक ही बहन से विवाह करना चाहते थे और दोनों को इसका बराबर अधिकार था। आखिर हाबील ने काबील को मार डाला और बहिन से विवाह कर लिया। काबील के शवकों क्या करे, इसका उसे ज्ञान न था। बहुत दिनों तक वह उस शव को लिये–लिये परेशान फिरता रहा, एक दिन उसने देखा कि एक कव्वा एक मुर्दे कव्वे को जमीन कुरेद कर कर दफन करा रहा है। हाबील में भी कव्वे की नकल की और भाई को पृथ्वी में गाड़ दिया। इससे पता चलता है कि मुसलमानों ने दफन करना कव्वे से सीखा है। वह काबील की जियरतगाह इसी पहाड़ी पर बनी हुई हैं। पहाड़ी के बीचों–बीच एक कंद्रा है। इस कंद्रा में से पानी टपकता रहता हैं। वहाँ के मुजाबिर (पुजारी) दर्शकों से कहते है कि पहाड़ रो रहा है और कयामत के रोज खुदा के पास यह शहादत देगा कि हाबील ने काबील को मारा था। उनकी यह बातें सुनकर मैंने अधिक ध्यान से उस कंद्रा को देखा। उसकी छत में एक शिवलिंग की तरह का पत्थर लगा हुआ है, जिसे यह कहते हैं कि यह उस पहाड़ी की जबान है, छत में दो सूराख बनाये हुए हैं, जिसे यह कहते हैं कि उसकी दो आँखें हैं जिनसे दिन–रात वह काबील की स्मृति में रोता है। भला कैसे न रोये जबकि पहाड़ की छत पर पानी के दो घड़े डाल दिये जाएँ और उस छत में दो सूराख कर दिये जाएँ?

यह कंद्रा भी सखरातल्लाह के सदृश अंधेरी है और मोमबत्ती की सहायता से काम चलता है। चूंकि यह जियारतगाह शहर से बाहर है, इसलिए, जो भी यात्री यहाँ सैर के लिए आते है, वे यहाँ पर विश्राम करते हैं, खासी भीड़ लगी रहती है, स्त्रियाँ भी काफी संख्या में आती हैं, परन्तु इसमें बुरके का नाम–निशान नहीं है। फ्राँसीसी राज्य होने से सब फ्राँसीसी पहनावा पहनने में अपनी शान समझते हैं। बुद्ढे भी एक इंच से अधिक लम्बाई की दाढ़ी रखना पसंद नहीं करते। भारतवर्ष के इस्लामी भाइयों की सी लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ तो मुझे सारे अरब में भी कहीं न मिल सकी। अब भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा हैं। कोई भय की बात नहीं है, दाढ़ी और बुर्के में इस्लाम थोड़े ही रखा है?

दमिश्क में अरब मुसलमानों की दो पार्टियाँ हैं। एक तो फ्रांसीसी शासन बनाए रखना चाहती हैं और दूसरी जनमत की अभिलाषी है। जिन दिनों भारतवर्ष में स्वदेशी की लहर चल रही थी तो इधर शाम में भी हर जगह ''शामी कपड़ा पहनों'' की ध्वनि आती थी। गाँधी को गान्दी कहते हैं और बहुत सम्मान करते हैं। मैंने यहाँ लगभग एक मास तक प्रचार किया और जमीयातुल हिजबुल्लाह स्थापित की। अन्य स्थानों की नाई यहाँ भी सिन्धी ताजरों ने मेरा काफी हाथ बटाया।

जबल दरूज

जबल दरूज का इलाका शाम से लगभग आठ दिन की यात्रा हैं। दरूज प्राचीन समय के आर्य हैं, जो कि अपना धर्म भूल कर दरूजी कहलाते हैं। नमाज़ आदि पढ़ना तो दूर रहा, ये लोग कुरान पर विश्वास तक नहीं रखते। एक विचित्र रिवाज इनमें यह है कि मरी हुई गाय की खाल में भूस भरकर उसकी पूजा करते हैं। इनके यहाँ जब कोई बालक होता है तो उसके आगे शिर निवाते हैं। यह एक साहसी जाति है और इनकी संख्या लगभग बीस हजार है। ये लोग मेरे प्रचार को बहुत प्रेम से सुनते थे और मैं बहुत शीघ्र ही जमीयातुल हिजबुल्लाह स्थापित करने में सफल हो गया। यहाँ मैंने दो मास तक प्रचार किया।

हलब

दरूज से होकर मैं दमिश्क लौट आया। दमिश्क से मोटर के जरिये हुमस हमा से होता हुआ एक दिन में हलत पहुँच गया। हलब एक ऐतिहासिक नगर है और मुसलमानों के नबीयहिया की जियारतगाह है। यहाँ रेशम के कारखाने बहुत है। इन कारखानों में यह विशेषता है कि बिना मशीनों के कपड़ा बुना जाता है।

यहाँ अरबों के अतिरिक्त एक अरमनी जाति है, जो तुर्की से आकर बसी है मैंने चार मास तक यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार किया और जमीयातुल हिजबुल्लाह स्थापित की लगभग १३६ सदस्य हो गये थे, जिनमें ५० अरब मुसलमान ४० अरब ईसाई, २५ अरमनी, २० यहूदी और एक तुर्की था। मैंने हिजबुल्लाह के सिद्धांत अरबी है, तुर्की और फ्राँसीसी भाषाओं में छपवा लिए थे और इन्हें मुफ्त बाँटता था। हमारा एक सिद्धांत यह था कि यदि कोई हमारे किसी सदस्य से पूछे कि तुम्हारा धर्म क्या है तो वह उत्तर दे कि मेरा धर्म हिजबुल्लाह है अर्थात् मैं आर्यसमाजी हूँ। इस प्रकार मेरे हिजबुल्लाह का सदस्य बनने

से पहले उसे पिछले धर्म को विदा कर देना पड़ता था। ईश्वर एक है तो उसके मानने वालों का धर्म भी तो एक होना चाहिये।

यहाँ तुर्की की ओर से एक सफीर भी रहता था। यह भी हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) का मैम्बर हो गया। तुर्की और हलब में रेल का सम्बन्ध है, इसलिए तुर्की लोगों की यहाँ बहुत आ जा रहती है। तुर्की लोगों में आर्यसमाज का प्रचार करने के लिए मैंने हलब को अपना हैडक्वाटर बनाया और यहाँ पर चार मास रहकर आर्यसमाज की बहुत-सी पुस्तकें तुर्की भाषा में प्रकाशित की। इन पुस्तकों को मैं यहीं से भेजता रहा।

तुर्की में आर्यसमाज के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। यहाँ तलाक की प्रथा होने से बहुत स्त्रियाँ और उनकी सन्तानें भटक रही हैं। एक समय में चार विवाह की आज्ञा ने भी बहुत लोगों को नरक में डाल रखा है। मेरे प्रचार का इन पीड़ितों पर बहुत प्रभाव पड़ा। मुझे यहाँ हिजबुल्लाह (आर्यसमाज) के प्रचार में आशा से अधिक सफलता मिली।

तुर्की

हलब से इसकन्दरूना एक दिन की यात्रा हैं। यहाँ शाम का इलाका समाप्त हो जाता है। साथ ही फ्राँस का प्रभाव भी अन्त हो जाता है। यहाँ से मैंने तुर्की में प्रवेश किया।

इसकन्दरूना में मैं दो सप्ताह तक प्रचार करता रहा। इसके बाद पैदल तुर्की चला गया। जैसा कि पहले कह आया हूं। तुर्की भाषा में छपी हुई हिज़बुल्लाह (आर्यसमाज) की पुस्तकें मेरे पास थीं जिन्हें मैंने अब तुर्की के बड़े-बड़े नगरों में बाँटना आरम्भ किया।

तुर्की में यद्यपि मुसलमानों का राज्य है, परन्तु भारतवर्ष से इसका आकाश और पाताल का भेद है। यूरोप के समीप होने से इस पर यूरोप का रंग चढ़ गया है। इसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। महायुद्ध से पहले और सन् १६१५ ई० तक तुर्की सारे अरब पर शासन करता था। इसका बादशाह केवल अरब और तुर्की का ही नहीं बल्कि सारे विश्व के मुसलमानों का बादशाह समझा जाता था। जब से इस्लाम चला है तब से खिलाफ़त की नींव पड़ी है। मुसलमानों के सबसे प्रथम खलीफा स्वयं हजरत मुहम्मद साहिब थे। जब अरब में तुर्की शासन था, उस समय मुसलमानों का खलीफा तुर्की के बादशाह को माना गया। तुर्की के बादशाह ने अपनी ओर से मक्का, मदीना, नजद और हजाज के

लिए कई एक अरब सैयद वायसराय के तौर पर नियत कर दिये थे। जब महायुद्ध आरम्भ हुआ तो तुर्की अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनों से मिल गया। इस पर मक्का के वायसराय शरीफ हुसैन ने तुर्की के विरुद्ध विप्लव मचा दिया और अरब लोगों को स्वतंत्र होने और तुर्कों को निकालने के लिए भड़काया। मक्का में गड़बड़ होते ही तुर्की के शेष मुल्कों में भी बगावत उठ खड़ी हुई। अरब तुर्की के हाथ से निकल गया और उसमें कई राज्य स्थापित हो गये। नजदोजहाज सुलतान इबनसऊद के हाथ आया। शरीफ हुसैन बगदाद और अलइराक का बादशाह बना। कुछ भाग अंग्रेजों और फ्राँसीसियों ने बाँट लिया और कहीं-कहीं अरबों को स्वयं स्थापित करने के लिए छोड़ दिया गया। फलतः तुर्की का सितारा डूब गया और उसका राज्य केवल तुर्की की दीवारों तक सीमित हो गया।

मैंने हलब और इस्कन्दूना में जाकर देखा कि तुर्की का युवक यूरोप का पूरा अनुयायी है। बुर्का और दाढ़ी से उसे बेहद घृणा है। वह अरबी लिपि को हटाकर लातीनी को अपनाना चाहता है। कुरान मजीद से उसे विशेष प्रेम नहीं है। धर्म के रक्षक मौलबी उसके मार्ग में रोड़े अटकाते हैं, परन्तु उसके आगे इनकी कुछ पेश नहीं चलती।

मेरी पुस्तकें लगभग छह मास से तुर्की में बट रहीं थीं जिनका प्रभाव जनता पर पड़ ही चुका था। ज्यों-ज्यों मैंने तुर्की की हकूमत में वैदिक धर्म का प्रचार किया, यह प्रभाव बढ़ता ही गया। दो मास के बाद अतना में तुर्की नवयुवकों ने एक बड़ी लहर चलाई। इसके साथ ही तुर्की राज्य की ओर से घोषणा हुई कि दाढ़ी और बुर्का त्याग कर इंग्लिश फैशन को स्थान दिया जाए और अरबी लिपि उड़ा कर यूरोप की लातीनी भाषा प्रचलित की जाए। तुर्की के नवयुवक सुधार के इच्छुक थे, परन्तु पुराने ढर्रे के लोग इस लहर का विरोध कर रहे थे। इन दो पार्टियों में प्रायः मुठभेड़ की नौबत आ जाती थी।

जब यह झगड़ा चल रहा था तो हकूमत ने मुझे अतना के मदरिसा तल अर्थात् कन्या पाठशाला में कई दिनों तक बन्द रखा और सिपाहियों का पहरा भी लगा दिया। जब राज्य पार्टी को विजय प्राप्त हो गई तो दाढ़ी और बुर्का का सफाया हो जाना तो आवश्यक था ही, साथ ही तुर्की टोपी भी हवा हो गई। अब तुर्की लोग हैट से मिलती-जुलती एक टोपी पहनते हैं, जिसे 'शबका' कहते हैं। यह यूनानी ईसाईयों की

नकल है। 'अस्सलाम अलैकुम' का स्थान 'बंजू' (अर्थात् नमस्ते) ने ले लिया। चार निकाह करना कानून के विरुद्ध बना दिया गया। एक घोषणा यह भी थी कि नमाज़ में बुलाने के लिए मस्जिदों के ऊपर खड़ा होकर, जो अज़ान दी जाती है, वह अरबी में न होकर तुर्की भाषा में हो।

तुर्की में दो मास तक प्रचार करने के बाद मैं अतना से वापिस इसकदरूना लौट आया। इसकन्दरूना में तुर्की फौजों ने डेरा लगाया हुआ था। जब मैं इसकन्दरूना से मोटर के जरिए ढाई घंटा के बाद हबल वापिस आया तो देखा कि यहाँ के अरबों के हृदयों में आतंक छाया हुआ है। हर तरफ यह अफवाह फैल गई थी कि हलब में फ्रांसीसियों का शासन हट कर तुर्की का राज्य हो जाएगा। दो पार्टियों भी बन गई थी। एक तुर्की को चाहती थी, दूसरी उसके विरुद्ध थी। इस पिछली पार्टी का कहना था कि तुर्कों का राज्य होने से नमाज़ और कुरान का पढ़ना भी बंद हो जाएगा। दाढ़ी और बुर्का से भी हाथ धोना पड़ेगा। इमकन्दरूना से कुछ दिनों बाद तुर्की सेना खुद ही उठ गई, जिससे हलब के लोगों को कुछ सन्तोष हुआ।

हलब पहुंचने पर दुर्भाग्य से मुझे पुलिस ने पकड़ लिया। मेरी जेब से सब निजि पत्र और कागज निकाल लिये गये। रातभर मैं पुलिस की हिरासत में रहा। सवेरे मैजिस्ट्रेट के सामने पेश हुआ और बयान दिया कि मैं भारतवर्ष से यहाँ तक अरब बादशाहों की आज्ञानुसार प्रचार करता हुआ चला आ रहा हूँ। मैजिस्ट्रेट ने मुझसे कहा कि तुम अंग्रेजी कोंसल (सफीर) से जाकर पासपोर्ट बनवा लो और उससे यह भी लिखवा लाओं कि तुम अंग्रेजी प्रजा के आदमी हो।

मेरे लिये पासपोर्ट लेना समस्या थी। अंग्रेजी कोंसल से पासपोर्ट उसी समय मिल सकता जबकि मेरा फोटो मेरे गांव के थाने में जाता और वह इस बात की हामी भरते कि यह व्यक्ति नेक चाल-चलन का है और इसने कभी राजनैतिक कार्यो में भाग नहीं लिया। यदि मेरे विरुद्ध कोई रिपोर्ट पहुँच जाती तो मुझे उसी समय गिरफ्तार कर लिया जाता। इन सब बातों को सोचते हुए मैंने पासपोर्ट लेना उचित न समझा और मैं अलइराक की ओर चल दिया। हलब से पैदल रिका की ओर आ रहा था कि मार्ग में रिका जाने वाली एक मोटर मिली। मोटर का ड्राइवर अतीव सज्जन पुरुष था, उसने मुझे बिठा लिया। रिका के

समीप जाकर यह मोटर उलट गई। मेरे घुटने में चोट आई, जिससे कुछ देर बेहोश पड़ा रहा। वहाँ के प्रेमियों ने मुझे दो सप्ताह तक रिका में ठहराये रखा। मैं उनमें वैदिक धर्म का प्रचार करता रहा।

यहाँ से चल कर तीन दिन में अबू कमाल पहुँचा और यहाँ एक सप्ताह तक प्रचार किया। यहाँ फ्रांस का राज्य समाप्त होकर अलइराक का इलाका आरम्भ हो जाता है। इस पुस्तक का चौथा परिच्छेद एक वर्ष चार मास बारह दिन की यात्रा के साथ यहाँ समाप्त होता है। अगले परिच्छेद में अलइराक का वर्णन करेंगे।

❑❑

पांचवा परिच्छेद

अलइराक

बगदाद को प्रस्थान

रेल अथवा किसी अन्य सवारी पर बैठने की बजाय मैंने सदैव पैदल ही चलने का प्रयत्न किया है, इसलिए भगवान का नाम लेकर मैंने फरात नदी का किनारा पकड़ लिया और बगदाद की ओर चलना आरम्भ कर दिया।

एक सप्ताह चलने के बाद मुझे मरुस्थल में कुछ मजदूर काम करते हुए मिले, जो एक अंग्रेज कम्पनी की आज्ञानुसार रेल की नई लाइन निकाल रहे थे। ये उस बड़ी लाइन का एक टुकड़ा था, जो कि अंग्रेज अरब और लन्दन के दरमियान बनाना चाहते है। बसरा से लेकर मूसल तक रेल गाड़ी तुर्की के समय से ली रही है। हलब से बैरूत तक भी गाड़ी चलती है। अब हलब से बगदाद तक रेल का रास्ता बन जाएगा तो यहाँ से लन्दन जाने का मार्ग खुल जाएगा। भारतवर्ष से यूरोप जाने वालों के लिए जहाज की यात्रा केवल बसरा तक होगी। इसके बाद बसरा से रेलगाड़ी में बैठकर बैरूत की बंदरगाह पर जा उतरेंगे। यहाँ जहाज से यूरोप जाने का सीधा रास्ता हैं।

मैं फरात नदी के किनारे–किनारे चलता गया। यहाँ के अरब खेती करते हैं। गेहूं भी पैदा होता है। जिधर दृष्टि घुमाओ, खजूर के पेड़ हैं। मैं पहले रुमादी नामी शहर में आया। यहाँ कुछ रोज वैदिक धर्म का प्रचार करने के बाद सीधा बगदाद जा पहुँचा।

अबू कमाल से चल कर रास्ते में कई छोटे–छोटे गांव पड़ते हैं। इन सबमें प्रचार करता हुआ मैं चालीस दिन में बगदाद पहुँचा था। अलइराक में बगदाद सबसे बड़ा और ऐतिहासिक शहर है। जब तुर्की का शासन अरबी प्रदेशों से उठ गया था, तो शरीफ हुसैन को बगदाद का बादशाह बनाया गया था। मेरे जाने से पूर्व ही उसका देहान्त हो चुका था। उसकी कब्र बैतुलमुकद्दस फिलस्तीन में मस्जिद अलअकस के हरम शरीफ में मौलाना मुहम्मद अली की कब्र के समीप ही है। उस समय बगदाद में मलिक फैसल इबन शरीफ हुसैन का शासन था।

यहाँ से रेलगाड़ी बसरा को जाती है और भारतवर्ष और यूरोप से जहाँ हवाई जहाज आते–जाते हैं। छापेखाने बहुत हैं, जहाँ से अंग्रेजी और अरबी के बहुत से समाचार–पत्र निकलते हैं।

महायुद्ध के समय से यहाँ भारतीय हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख यहाँ बसे हुए हैं, जो यहाँ के राज्य कार्य में भाग लेते हैं। सारे अल इराक में अंग्रेजी और अरबी के स्कूल है। अंग्रेजी पढ़े–लिखों को विशेषता दी जाती है। दाढ़ी और बुर्का का नाम तक नहीं है।

भारतीयों के साथ अरब ईसाई और अरब यहूदी भी बसते है। अरब मुसलमानों की तो यह भूमि ही है, परन्तु इनमें शिया सम्पद्राय के मुसलमान अधिक हैं। मुसलमानों का यह एक पवित्र शहर माना जाता है। यहाँ हजरत अब्दुल कादर जिलानी की जियारत गाह है, जो सुन्नी मुसलमानों का एक बड़ा पीर था। भारतीय मुसलमान यहाँ प्रायः दर्शन के लिए आते है।

जब मैं वहाँ पर वैदिक धर्म का प्रचार कर रहा था तो लोगों ने मुझसे पूछा कि आप जिन–भूतों को क्यों नहीं मानते ? मैंने उन्हें युक्तियों से बताया कि वास्तव में जिन्न–भूत कोई वस्तु नहीं है। अरबों ने कहा कि यहाँ एक कब्रिस्तान है, जिसमें इमाम गिजाली दफन हैं। इस कब्र में से कभी–कभी एक जिन्न निकलता है और जो सिपाही उस समय पहरे पर होता है उससे कह देता है कि एक रियाल (वहाँ का सिक्का) सुबह की नमाज़ की अजान के साथ यहाँ लाकर रख दो। लोग भय के कारण समय से पहले ही एक रियाल वहाँ रख आते हैं। मेरे मन मैं इस भूत के साक्षात् दर्शन की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन संयोग से काले–काले बादल घिर आये और रात्रि बहुत अंधेरी थी। जब दस बजे तो मैंने इस कब्रिस्तान में प्रवेश किया। मैं कब्र के पास गया, परन्तु वहाँ इस समय कोई न था, इसलिए मैं कब्रिस्तान के दूसरी ओर एक पेड़ की आड़ में खड़ा होकर देखने लगा। एक घन्टे के बाद मुझे इस कब्रिस्तान में किसी के धीरे–धीरे चलने की आहट आई। अंधेरा इतना था कि बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ दिखाई न दिया। संयोग से इसी समय मेघ गरजा और बिजली चमकी। मैंने इस क्षणिक प्रकाश में से देख लिया कि इमाम ग़िजाली की क़ब के पास कोई आदमी खड़ा हुआ है। वह इधर–उधर देख कर क़ब्र पर लेट गया। वह लेटा ही था कि फिर प्रकाश हुआ और मैंने उसे श्वेत चादर ओढ़े हुए

देखा। चादर ओढ़ने के बाद पन्द्रह–बीस मिनट तक वह रोता रहा और इतना ही समय हँसता रहा। अब मैंने उसकी ओर चलना आरम्भ किया और साथ ही खाँसने लगा। उसने मेरा शब्द सुनते ही चिल्ला कर कहा 'दूर भाग जाओ और सुबह ही नमाज़ के वक्त एक रयाल यहाँ रख देना।' मैं क़ब्र के पास जा पहुँचा और उससे कहा–तुम यहाँ से उठ बैठो नहीं तो तुम्हारी शामत आई है, परन्तु उसने मानो न उठने की क़सम खाली थी। मैं लाठी साथ लेता आया था, उसका प्रयोग शुरू कर दिया। बस फिर क्या था—''**लाठी के आगे शैतान भी भागता है**'' की कहावत चरितार्थ हुई। वह दो–एक चोटों में भाग खड़ा हुआ। मैंने उसका पीछा किया। मेरी एक लाठी उसकी टाँग पर पड़ी, जिससे वह गिर पड़ा। मैंने चौक पर खड़े हुए सिपाही को बुलवा लिया और उससे सारा माजरा कह दिया। सवेरे मालूम हुआ कि वह मनुष्य मुसलमानों के पीर हज़रत अब्दुल क़ादिर जिलानी की क्रब का मुज़ाविर (पुजारी) है। उसने बयान दिया कि उसके पीर ने उससे कहा हुआ था, जिस दिन चरस के लिए पैसे न हों उस दिन कब्र पर जिन्न भूत बन कर लोगों से पैसे प्राप्त कर लिया करना। इस पर थाना में बड़ी दिल्लगी रही। कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उस पर तरस खाकर उसकी सिफ़ारिश की और वह इस शर्त पर थाना से छूटा कि आइन्दा जिन्न भूत बन कर जनता को न लूटे।

महायुद्ध के समय से जहाँ भारतीय मुसलमान अलइराक़ में बसे हुए हैं वहीं हिन्दू भी बस गये हैं। इनमें पँजाबी हिन्दुओं की संख्या अधिक है। अलइराक़ की हकूमत का क़ानून है कि वहाँ का कोई मुस्लिम व्यक्ति धर्म–विच्छेद नहीं कर सकता। इतनी कड़ी आज्ञा होते हुए भी अलइराक़ की अरबी जनता हिज़बुल्लाह में सम्मिलित होती रही। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर भारतीय मुसलमान भाई भी जलसे में पधारे थे। दशहरा का त्यौहार आर्यसमाज बग़दाद में मनाया गया, जिसमें आर्यसमाजी भाइयों के साथ वहाँ के अरब निवासी और सिक्ख महानुभावों ने भी दर्शन दिये।

अरब में जहाँ–जहाँ भारतवर्ष के मुसलमान बसे हुए हैं, वे प्रायः मिलकर रहते हैं। उन्हें अरबी सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहाँ तक कि वे लोग, जिन्हें वहाँ रहते हुए चालीस–चालीस वर्ष बीत गये हैं उनको भी अरबी का एक अक्षर नहीं आता।

मेरे जाने से पहले आर्यसमाज का मन्दिर किराये व मकान में था। मैं वहाँ के बादशाह मलिक फ़ैसल इबन शरीफ़ हुसैन के पास गया, उससे आर्यसमाज मन्दिर के लिए भूमि माँगी। उसने पहले तो हमें यह उत्तर दिया कि बाहर से आये हुए लोगों को यहाँ मकान बनाने की आज्ञा नहीं मिल सकता, परन्तु जब मैंने उसे विश्वास दिलाया कि यह स्थान ईश्वरोपासना के सिवाय और किसी की व्यक्तिगत मलकीयत न होगी तो उसने ज़मीन खरीदने की आज्ञा दे दी। मैंने लगभग चालीस दिन तक बग़दाद में वैदिक धर्म का प्रचार किया।

कर्बला को प्रस्थान

दशहरे के बाद मेरी इच्छा थी कि दीवाली का त्यौहार भी बग़दाद में मनाऊं, परन्तु उन्हीं दिनों कुछ सज्जन कर्बला से वहाँ आये हुए थे। उन्होंने मुझे साथ चलने के लिए मजबूर किया और रेल में मुझे अपने साथ बिठा कर ले गये, इसलिए मैं बग़दाद की दीवाली न देख सका।

कर्बला एक ऐतिहासिक नगर है। मुसलमानों का पवित्र स्थान है। इस शहर में सब शीआ लोग बसते हैं, सुन्नी लोगों की केवल एक मस्जिद है, जिसके पास थोड़े से सुन्नी रहते हैं।

शीआ और सुन्नी लोगों के झगड़े का यहाँ नग्न चित्र मिलता है। यदि दुर्भाग्य से यहाँ कोई सुन्नी मुसलमान आ जाता है तो ये लोग उसका नाक में दम कर देते है। इस विरोध की गाथा इस प्रकार सुनी जाती है कि यजीद नामी एक सुन्नी मुसलमान ने हजरत हुसैन को बड़ी निर्दयता से वध किया था। उसी दिन से शिया लोग सुन्नियों से बैर रखने लगे है।

प्रायः भारतवर्ष से सुन्नी भाई हजरत हुसैन की जिआरत करने कर्बला पहुंचते हैं, परन्तु जिआरतगाह के बाहर जहाँ जूता उतारते हैं वहाँ से ही दर्बान लोग इनको परेशान करना आरम्भ करते हैं। कोई बिरला ही जिआरत का आनन्द उठाता होगा, वरना अकसर को तो शीघ्र से शीघ्र वहाँ से भागना पड़ता है।

इनका तंग करने का भी ढंग निराला है। बगदाद में मैं जब अपना जूता निकाल कर भीतर जाने लगा तो इन्होंने मुझे सुन्नी समझा और हजरत अबूबकर की शान में, जो हजरत मुहम्मद साहब के मित्र थे, कुछ उलटी सीधी बातें कहीं। जब मैंने उन्हें बतलाया कि मैं मुसलमान

नहीं हूं, आर्य हूं तो मुझे अन्दर जाने में कोई अड़चन न आई।

मैंने कर्बला में दो सप्ताह तक प्रचार किया। यह नगर उस लाइन पर है, जो बगदाद से बसरह तक जाती हैं। कर्बला और अलइराक के अन्य बड़े-बड़े नगरों में मोटरें चलती हैं। तार और टेलीफौन का भी सम्बन्ध है। इराकी शिक्षित समुदाय का पहनावा अंग्रेजी है, परन्तु शेष लोग साधारण अरबी ढंग से रहते हैं। खेती-बाड़ी दजला और फरात की नदियों द्वारा होती है।

कर्बला से मोटर द्वारा में नजक आ गया और यहाँ दस प्रचार किया।

बसरा को प्रस्थान

इसके बाद शाहनजफ से चल पड़ा और कूफा से बसरा बीस दिन में पहुँच गया। मार्ग में, जो बड़े-बड़े नगर आते थे। उनमें भी वैदिक धर्म का प्रचार करता था। जब मैं बसरा पहुँचा तो वहाँ पर मुझे भारतीय मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दू और सिक्ख भाई भी मिले।

बसरा में मैं जंग जर्मन के दिनों से एक गुरुद्वारा भी बना हुआ है। संयोग से, जिस दिन मैंने बसरा प्रवेश किया उसके दूसरे दिन गुरु नानक देव जी का जन्मोत्सव मनाया जाना था। उस दिन मैं भी गुरुद्वारे में गया। जलसा बड़ी शान के साथ मनाया गया। मेरे प्रचार का यहाँ के अरब मुसलमानों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनमें से कुछ तो वैदिक धर्म में खुल्लमखुला प्रवेश करने के इच्छुक हो गये, परन्तु अलइराक का कानून इस परिवर्तन में बाधा डालता था तो अब उन्होंने मेरे हिजबुल्लाह के सिद्धान्त ग्रहण कर लिये थे।

बसरा में मैंने लगातार बीस दिन तक वैदिक धर्म का प्रचार किया। यहाँ खलीज फारिस का अन्त होजा है। दजला और फरात नदियाँ समुद्र में गिरती हैं। बसरा में अंग्रेजी व अरबी के बहुत से स्कूल हैं। मोटरें काफी संख्या में चलती हैं। तिजारत के लिहाज से बहुत बड़ा नगर है। यहाँ से अरब लोग नावों में खजूर भरकर भारतवर्ष लाते हैं और खजूर बेच कर उसके बदले में चावल भर ले जाते हैं।

बसरा से चलकर मैं जुबेर आ गया। यह भी मुसलमानों का एक पवित्र स्थान माना जाता है। यहाँ मैं दो सप्ताह तक रहा और वैदिक धर्म का प्रचार करता रहा। इसके पश्चात् मुझे कोयत, कतर, दुबई, मसकत

और अदन जाना था, इसलिए मैं जुबेर से कोयत के लिए रवाना हुआ।

यहाँ पर इस पुस्तक का पाँचवा परिच्छेद पाँच मास चौदह दिन की यात्रा के साथ समाप्त होता है। अब छठे परिच्छेद में कोयत, कतर, दुबई से अदन तक की यात्रा का हाल लिखेंगे।

❑❑

छठा परिच्छेद

कोयत, कतर, दबैई, मसकत, खलीज फारिस, मरबात, जुफार, मोकल्ला, अदन

कोयत को प्रस्थान

मैं जुबेर से पैदल चल पड़ा और खलीज फारिस के किनारे-किनारे चल कर तीन दिन में कोयत की बंदरगाह जा पहुँचा। यहाँ का बादशाह शेख हसन बिन सबाह है, जो बड़ा नेक बादशाह है। विशेषता यात्रियों के साथ उसका बर्ताव बहुत अच्छा है। मैंने उससे मुलाकात की और प्रचार की आज्ञा चाही, जो उसने प्रसन्नतापूर्वक दे दी। मैंने लगभग बीस दिन यहाँ प्रचार किया। मेरे जाने से पहले किसी हिन्दू को यहाँ तिजारत करने की आज्ञा न थी, परन्तु बाद में हो गई।

कतीफ को प्रस्थान

मुझे कोयत से कतीफ बदरगाह जाना था, जो कि बहरन टापू के सामपे ही है। यह आठ दिन का मार्ग है। मार्ग में सुनसान जंगल के अतिरिक्त रास्ते में कोई गांव दिखाई नहीं देता। यदि इस मरूस्थल में कहीं कुंआ होता है, तो सिवाय वहाँ के जंगली बद्दू लोगों के उसे कोई ढूंढ़ नहीं सकता। कोई विशेष मार्ग भी नहीं है। खलीज फारिस का किनारा सबसे अच्छा रास्ता है। मार्ग में कहीं-कहीं बद्दू लोग बकरियाँ चराते हुए मिलते हैं। वे लोग एक स्थान में टिककर कभी निवास नहीं करते। आज एक जगह हैं तो कल दूसरी जगह।

कोयत से चलते हुए मुझे दो घण्टे बीते थे कि मार्ग में तीन मनुष्य मिलें। इनमें एक तो बगदाद का सैय्यद था, दूसरा अफगान और तीसरा ईरानीशीआ। ये तीनों मेरे साथ हो लिये। शाम को काफी चलने के बाद हम बैठ गये और इन्होंने खाना खाया एवं बहुत सा पानी पिया। दूसरे दिन ये लोग अपना सारा पानी समाप्त कर बैठे। आठ दिन का पानी, जो मैं अपने साथ लाया था, उसे ये तीसरे ही दिन पी गये। मार्ग में पानी का नाम न था। दो दिन तक तो हम बिना पानी के चलते रहे, परन्तु तीसरे दिन सबका दम लबों पर था। हम हर पहाड़ी पर चढ़ कर देखते कि कहीं कोई छिपा हुआ कुआँ तो नहीं है, अथवा कहीं भेड़-बकरियाँ

तो नहीं चर रही हैं। अफगानी ने कहा कि वह पहले डाकू था, इसलिए उसे दूर से आदमी वा आबादी जानने की विधि आती है। जब किसी दूर की चीज को देखना हो तो पृथ्वी की और न देखकर आकाश की ओर देखना चाहिए। जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले होते हैं वहाँ ध्यान पूर्वक देखने से मालूम हो जाता है कि उधर कोई मनुष्य अथवा पशु है या नहीं। उसने ऐसे ही किया और थोड़ी देर देखने के उपरान्त उसे खलीज फारिस के किनारे पर कुछ ऊँट चरते हुए दिखाई दिये। हम भागते हुए दिन छपने से पहले ही वहाँ पहुँच गये। ऊँट अब साफ दिखाई दे रहे थे। अफगानी साहब ने अपना बर्तन उठाया और दूध लेने चले। दुर्भाग्य से वे सब ऊँट ही निकले, ऊँटनी एक भी न थी। ईरानी की दशा पहले ही बहुत बिगडी हुई थी, वह गिर पड़ा और उसे जोर का बुखार हो आया। मेरे कहने पर रात को हम सब उसके पास ठहरे रहे। सवेरा हुआ, परन्तु उसकी दशा न सुधरी। बुखार के कारण वह चलने में बिल्कुल असमर्थ था। वहाँ ठहरे रहने का अर्थ निश्चित मृत्यु था, इसलिए हमारे दो साथियों ने चलने का निश्चय किया। ईरानी अब रोने लगा और हमसे बोला मुझे यहाँ अकेला छोड़ कर मत जाओ। सैय्यद और अफगानी साहब ने कहाकि इस समय सबको अपनी-अपनी जान बचानी चाहिये और यह कह कर वे हम दोनों को भाग्य पर छोड़कर चले गये।

उनके चले जाने के बाद मैंने ईरानी से कहा कि तुम मेरा सहारा लेकर चलने का प्रयत्न करो। जब उसने चलने में मजदूरी प्रकट की तो मैंने कहा कि पानी का प्रबन्ध तो करना ही चाहिए। तुम यहीं रहो और मैं पानी की खोज में जाता हूँ। यदि मिल गया तो तुम्हारे लिये अवश्य लाऊँगा। वे दोनों अभी तक भागे जा रहे थे और उन्हें इस प्रकार जाते देख पहले तो मेरा मन भी कुछ डरा, परन्तु उसी समय परमात्मा ने मेरे मन में यह बात डाली कि तू समुद्र के किनारे-किनारे चल। चलने से पहले मैंने स्वयं स्नान किया और अपने बीमार साथी से भी स्नान के लिए कहा—परन्तु वह न माना। अब मैंने भागना आरम्भ किया। दो घण्टे के बाद मुझे एक ऊंची पहाड़ी मिली। उसके ऊपर चढ़कर मैंने देखा कि बद्दू लोगों के झोपड़े समीप ही हैं। भाग कर वहाँ पहुँचा और उन बद्दुओं से अपने तीनों साथियों के बिछुड़ने की वार्ता कही। उन्होंने मुझे तीन ऊँट दिये। मैं दो बद्दुओं को लेकर पहले तो

अफगानी और ईरानी साहिबों की खोज में गया, क्योंकि वे लोग मरुस्थल की ओर भागे थे और उन्हें बचाना पहला कार्य था।

हमने उनकी ओर ऊँट दौड़ाये। कोई दो मील गये होंगे कि एक ऊंचे रेत के टीले पर वह खड़े हुए मिले। वे इधर-उधर दृष्टि दौड़ा रहे थे। हमारे ऊंटों को देखते ही वे रोने लगे और दूर से पानी माँगने लगे। उनको स्वप्न में भी यह ध्यान न आ सकता था कि मैं ही उनकी ओर ऊंट ला रहा हूँ। हमने उन्हें पानी पिलाकर ऊंटों पर सवार कर दिया और खुशी-खुशी बद्दुओं के झोपड़ों में लौट आये।

इसके बाद मुझे ईरानी को ढूंढ़ने की फिक्रसवार हुई। हम उस ओर गये जहाँ उसे मैं छोड़ कर आया था, परन्तु वहाँ जाने पर देखा तो उसका पता न था। हमने इधर-उधर बहुत खोज की और शाम तक ऊँटों को दौड़ाते रहे, परन्तु उसका कहीं पता नहीं चला। जब रात हो गई तो लाचार वापिस लौट आये, दूसरे दिन फिर उसकी खोज में गये, परन्तु निष्फल,जब दूसरा दिन भी निकल गया तो मेरा मन बैठ गया। आज तक मुझे इसका खेद है कि मैं इतना भी न जान सका कि आया वह जीवित है या मर गया।

झोपड़ों में विश्राम कर चुकने के बाद हम तीनों वहाँ से चल दिये और कतीफ पहुँच गये। कतीफ बंदरगाह में मैं पहले भी एक बार आ चुका था और यहाँ से अलहसा,रयाज और मक्का को गया था। यहाँ पहुँचते ही मुझे पूर्व परिचित लोग मिलने लगे। इनमें से कई तो मेरे मुरीद (शिष्य) थे। मैंने इनसे सारा वृतान्त कहा और कुछ एक को उस ईरानी की खोज निकालने के लिए भेजा, परन्तु वे भी असफल रहे।

कतीफ में बारह दिन ठहर की कतर जाने वाली एक नाव में सवार हुए। नाव को चलते हुए अभी एक दिन ही बीता था कि समुद्र में जोर का तूफान आया। किश्ती को वहीं पर लंगर डाल कर रोक दिया गया। रात भर नाव हवा से हिचकोले खाती रही। सब अपनी-अपनी जान की खैर मना रहे थे। इतनी कुशल हुई कि बहुत शीघ्र ही बला टल गई। सवेरा होते ही वायु अनुकूल हो गई। थोड़ी देर में हम कतर पहुँच गये।

कतर में मेरा पहुँचना था कि वहाँ का शासक अबदुल्ला बिन कासिम मुझसे मिलने के लिए आया। यहाँ मैं पहले भी प्रचार कर चुका था। अधिक समय यहाँ ठहरना न चाहता था।

परन्तु लोगों ने ऐसा आग्रह मजबूर किया कि मुझे एक मास वहाँ रहकर प्रचार करना पड़ा।

दुबई मसकत को वापिसी

यहाँ से मैं नाव में बैठ कर पाँच दिन में दुबई पहुँच गया। दबैई पहुँचने पर शेख सईद और हिन्दू भाइयों से मिला। यहाँ भी कुछ समय पहले प्रचार कर चुका था। उन लोगों से दोबारा मिलकर, जो प्रसन्नता हुई, वह वर्णन से बाहर है।

यहाँ मैं ग्यारह दिन रहा। इसके बाद शेख सईद और अन्य भाइयों की आज्ञा लेकर जहाज से मसकत पहुँच गया।

मुझे जहाज, पर कैसे बिठा लिया गया जब मेरे पास पासपोर्ट नहीं था। कारण यह है कि पासपोर्ट की पाबन्दी केवल कराची आदि बंदरगाहों में है। पसनी, गवादर, मसकत, दबैई इन चारों बंदरगाहों में कोई पासपोर्ट नहीं पूछता। सब अरब बिना पासपोर्ट के चढ़ते–उतरते हैं। ये चार बंदरगाहें अरबों की हैं, जिन्हें पासपोर्ट का ज्ञान तक नहीं है।

मसकत पहुँचने ही जलालातल सुलतान साहब बड़े प्रेम से मिले। जैसा कि पहले कह आया हूँ यहाँ पर भी एक बार प्रचार कर चुका था। कई भारतीय मित्र भी मिले। मैं यहाँ रहकर समय खर्च नहीं करना चाहता था। फिर भीं इन लोगों के आग्रह करने पर मुझे पंद्रह दिन ठहरना पड़ा।

मसकत से मर्बात जुफार को प्रस्थान

यहाँ से मैं मोकल्ला, अदन को जाना चाहता था, इसलिए समुद्र का तट पकड़ लिया। यह मार्ग सुनसान होने से बद्दू लोग लूट मार करते हैं। प्रायः लोग मसकत से मोकल्ला नाव में बैठकर जाते हैं, परन्तु मैं तो वैदिक धर्म का प्रचार करने को निकला था और मैं उन लोगों की खोज में था, जिनका सुधार अभी तक मुसलमान भी नहीं कर सके थे, इसलिए मैंने पैदल का ही मार्ग पसन्द किया। मसकत से मबात पच्चीस दिन का रास्ता है। रास्ते में बद्दुओं के बहुत से छोटे–छोटे गांव पड़ते हैं। पानी तो तीन–तीन दिन से पहले कभी मिलता ही नहीं, इसलिए कम से कम तीन दिन का पानी साथ रखना पड़ता है। यह बोझा यात्री को और थका देता है। इन इलाकों के अनुभव ने मुझे

बताया कि ये लोग वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। शंका तक नहीं करते। वे वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर विश्वास लाने लगे। मेरे प्रचार का इन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे मुझे वली अल्लाह और गुरु मानने लगे, परन्तु मैंने उन्हें बताया कि मैं केवल एक छोटा सा सेवक हूँ, जो भारतवर्ष से उन तक वेद का संदेश पहुँचाने आया हूँ।

मर्बात बद्दुओं का गांव है, परन्तु इसमें यह खूबी है कि यहाँ से मोकल्ला तक यात्री को किसी प्रकार का भय नहीं है। यहाँ बारह दिन प्रचार करके नाव से एक दिन में जफार पहुँच गया।

जुफार यद्यपि एक बड़ी बंदरगाह है, परन्तु अधिक प्रसिद्ध नहीं है। सारे अरब में कहीं भी नारियल नहीं होता, परन्तु यहाँ नारियल बहुत संख्या में उत्पन्न होता है। एक नारियल एक पैसा था उससे भी कम दाम में मिलता है। यहाँ रोगन जर्द (घी) भी सस्ता मिलता है, याने दस रुपये में एक पीपा। रियासत कच्छ और काठियाड़ से बड़ी नावें, जो कि वायु के जरिये चलती हैं, मसकत, मर्बात और जुफार को आती हैं। इनमें ताजिर लोग जुफार से नारियल, घी और खजूर ले जाते हैं और वहाँ से ज्वार, बाजरा एवं चावल भर कर लाते हैं। यहाँ पान भी उत्पन्न होता है, जो सारे अरब भर में कहीं नहीं होता। मैंने यहाँ पर बीस दिन तक प्रचार किया।

मसकत से लेकर अदन तक अरबों का पहनावा नजदी और हजाजी लोगों से मिलता-जुलता है। विवाह के अवसर पर चार पुरुष और चार स्त्रियों का नाच होता है। प्रत्येक पुरुष के साथ एक स्त्री खड़ी कर देते हैं। ढोल बजता है और चारों पुरुष गाते हुए दो कदम आगे बढ़ कर स्त्रियों की ओर मुँहकर के गाने लगते हैं और फिर गाते हुए अपने स्थान पर आ जाते हैं। अब स्त्रियाँ दो कदम आगे बढ़ कर गाती हैं और पुरुष खड़े रहते हैं। इस प्रकार बारी-बारी पुरुष स्त्रियाँ गाते और नाचते हैं।

शहर मौकल्ला और अदन को प्रस्थान

जुफार से नाव में बैठकर कर 'शहर' की बंदरगाह को रवाना हुआ। तीन दिन के बाद समुद्र के किनारे एक पहाड़ी पर एक भारी मूर्ति दिखाई दी। नाव में, जो अरब थे, उन्होंने उस मूर्ति की ओर संकेत

किया। वे इसे सनम–अल बनयान याने (हिन्दुओं) की मूर्ति कहते हैं। कुछ समय के बाद इस रास्ते से गुजरते हुए मैं इस मूर्ति के पास ठहरा था। यह मूर्ति कम से कम एक हजार वर्ष पुरानी है। इस्लाम के प्रचार के पूर्व यहाँ हिन्दू बसे हुए थे। महाभारत के युद्ध के बाद विद्वानों और योगियों के मारे जाने से वेदों का प्रचार विदेशों में होना रुक गया, इसलिए वे लोग अपना धर्म भूल कर मुसलमान हो गये।

'शहर' में भारतीय खोजा मुसलमान कारोबार करते हैं। यहाँ दो सप्ताह तक वैदिक धर्म का प्रचार करके मोटर के जरिये एक दिन मोकल्ला आ गया।

मोकल्ला एक बंदरगाह है। यहाँ से नावें अदन, जुफार, मसकत और भारतवर्ष को आती–जाती रहती हैं। अदन से बम्बई को जाने वाले जहाजों में से कोई–कोई इधर आ जाता है। गुजराती हिन्दू, जो यहाँ कई हजार वर्ष से बसे हुए हैं और भारतीय शीआ लोग यहां तिजारत करते हैं।

यहाँ के शासक सुलतान अवज की ओर से प्रजा के लिए एक अस्पताल खुला हुआ है। एक अरबी की पाठशाला भी है। एक बाजार बहुत बड़ा है, जिसमें होटल और चाय की दुकानें अधिक हैं। मैंने यहाँ एक मास तक प्रचार किया। फिर नाव में सवार होकर दो दिन में शुकरा जा पहुंचा।

'शुकरा' की बंदरगाह अदन के समीप है। यहाँ का शासक उच्च विचारों का है। उसने मुझे केवल वैदिक धर्म के ही प्रचार की आज्ञा न दी बल्कि मेरी काफी सहायता भी की, जिसके लिए मैं उसे धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मैंने यहाँ एक सप्ताह तक वैदिक धर्म का प्रचार किया और फिर अदन के लिए पैदल चल पड़ा।

अभी चलते हुए एक दिन ही बीता था कि सामने से अदन के लाईट हाऊस से रोशनी कर देते हैं, जिससे जहाज रास्ता मालूम कर लेता है। तीन दिन और चलकर मैं शेख उसमान पहुंच गया। यहाँ से अदन तक पैदल तीन दिन तक की यात्रा है। मोटरों के लिए शेख उसमान से अदन तक पैदल तीन दिन की यात्रा है। मोटरों के लिए शेख उसमान से अदन केवल आध घण्टे का मार्ग है।

शेख उसमान एक बड़ी बंदरगाह तो है ही, परन्तु नगर भी बहुत बड़ा है। बाजार बहुत चौड़े–चौड़े हैं और बागों की तो गिनती नहीं है।

गर्मी के दिनों में अदन से लोग मोटरों में बैठ कर यहां सैर के लिए चले आते हैं। यहाँ भारतीय हिन्दू और मुसलमान भी काफी संख्या में बसे हुए हैं। हिन्दुओं का यहाँ एक बहुत बड़ा बाग है, जिसमें एक गोशाला बनी हुई है। मैं यहाँ एक सप्ताह ही प्रचार कर पाया था कि अदन से आये हुए एक सज्जन, जो यहाँ सैर के लिए आये हुए थे। मुझे अपने साथ ले गये।

शेख उसमान में अरब राज्य करता था, परन्तु अदन अंग्रेजों के नीचे है। अदन के निवासी तो अरब हैं, परन्तु वह जहाजों की बड़ी बंदरगाह होने से अंग्रेजों ने इसे अपने पास रखा हुआ है। यहाँ हिन्दी और अंग्रेजी फौजें भी रहती हैं। अदन दो स्थानों पर बसा हुआ है। एक तो अदन की बंदरगाह है, जिसको अंग्रेजों में 'स्टीमर प्वाइण्ट' और अरबी में 'तवाही' कहते हैं। दूसरा अदन का शहर है, जो 'अदन कैम्प' के नाम से प्रसिद्ध है। अदन के जहाजों को जंकशन समझिये। यहाँ यूरोप, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, अमरीका, चीन, जापान और अफ्रीका के जहाज खड़े होते हैं। हर देश का माल यहाँ मिलता है और सस्ते दामों पर। यहाँ अमरीकन कोंसल (प्रतिनिधि) के अतिरिक्त और भी राज्यों के प्रतिनिधि ने मुझसे पासपोर्ट के लिए न पूछा, जो लोग जहाज से उतरते हैं उनका पासपोर्ट देखा जाता है। एक बार एक भारतीय दर्वेश अदन के अंग्रेजी कोंसल के पास जाकर बोला—मैं वापिस बम्बई जाना चाहता हूँ। कोंसल ने जब पूछा कि पासपोर्ट कहाँ है तो उसने कहा मैं बिना पासपोर्ट के यहाँ तक पैदल पहुँचा हूँ। कोंसल ने कहा— तो पैदल ही लौट भी जाओ। मैंने स्टीमर प्वाइट में लगभग दो सप्ताह तक प्रचार किया और आर्यसमाज स्थापित कर दी।

'अदन कैम्प' एक बड़ा नगर है, जिसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं। ये पहाड़ हवा को रोक लेते हैं, इसलिए गर्मी के दिनों में यहाँ पर ठहरना कठिन हो जाता है। यहाँ की गर्मी मक्का को मात करती है। यहाँ भारतवर्ष का रुपया चलता है। अंग्रेजी स्कूल भी बहुत से हैं।

अदन में हर प्रकार के लोग मिलते हैं। अरबों की तो भूमि ही है। भारतीय हिन्दू, मुसलमान, बोहरे शीआ और यहूदी सब यहाँ बसे हुए है और तिजारत करते हैं। सब देशों के फल और मेवे यहाँ मिल सकते हैं। यूरोप, जर्मनी, अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान और भारतवर्ष का जो माल चाहो यहाँ से ले लो। अदन में कुछ पैदा नहीं

होता। यमन से ही हरी तरकारियाँ और फल यहाँ आते हैं।

अदन में एक मास प्रचार करने के बाद मैंने यमन जाने का निश्चय कर लिया, इसलिए मोटर से वापिस शेख उसमान चला गया। मेरी अनुपस्थिति में पंड़ित कन्हैला लाल जी अफ्रीका से यहाँ पधारे थे। पंडित जी ने आर्यसमाज अदन और आर्यसमाज स्टीमर याइल में लगभग एक मास तक वैदिक धर्म का प्रचार किया था। इसके बाद आप भारत वर्ष चले आये थे।

इस पुस्तक का छठा परिच्छेद नौ मास दस दिन की यात्रा के साथ समाप्त होता है। अब साँतवें परिच्छेद में यमन का वर्णन करेंगे।

❑❑

सातवां परिच्छेद

यमन को प्रस्थान और भारतवर्ष को वापिसी

लहज

शेख उसमान पहुँचने के बाद मैं मोटर के जरिए एक दिन में लहज जा पहुँचा। यह एक बड़ा नगर है। यहाँ का बादशाह फजलबिन अब्दुल करीम है, जो अतीव उदार,न्यायप्रिय और सज्जन व्यक्ति है। मैं उसके खानदान के सभी मनुष्यों से मिला और सबके सब मुझे बहुत सज्जन प्रतीत हुए।

सुलतान ने मुझे वैदिक धर्म के प्रचार की आज्ञा दे दी। केवल यहीं नहीं,उसने हिन्दुओं के लिए सदैव के लिए मार्ग खोल दिया, जहाँ वे निधड़क, जिस वस्तु की चाहें तिजारत कर सकते हैं। शाह मौसूफ का एक लड़का शहजादा अली तो हर समय मेरे पास ही रहता था, क्योंकि उसके मन पर मेरे प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ चुका था। कुरान में लूत जाति के विषय में, जो बातें लिखी हुई हैं वे अब तक अरबों में पाई जाती हैं। जब कोई सज्जन इनके दोष निकालना चाहता है तो वे निधड़क उत्तर देते हैं कि अल्लाह मियां स्वयं कुरान में लिख गये हैं कि बहिश्त में हूरें और गिलमान में मिलेंगे। यदि वे यहीं मिल सकते हैं तो हर्ज क्या हैं ? इन कुप्रथाओं की जिम्मेवारी कुरान शरीफ पर है, जिसमें ऐसी बातें लिखी हैं।

मेरे प्रचार से बादशह बहुत प्रसन्न था और उसने मुझसे कहा कि सदैव के लिए हमारे शाही स्कूल में हैडमास्टर का काम करूं, परन्तु मुझे यमन जाना था, इसलिए दो सप्ताह तक प्रचार करने के बाद रवाना हो गया।

तइज और जुबीद को प्रस्थान

यहाँ से मैं दो दिन में खंदक और वहाँ से मुआविया जा पहुंचा। यहाँ सुलतान लइज का राज्य समाप्त होकर यमन की सीमा आरम्भ हो जाती है। मैं यहाँ से एक दिन में तइज पहुँच गया। यह एक बड़ा शहर हैं। इसके चारों ओर फसील बनी हुई है। हमाम यमन की फौज यहाँ रहती है।

यहाँ के अल अमीर (डिप्टी कमिश्नर) और आमिल (तहसील-दार) साहिब मुझ पर विशेष कृपालु थे। उन्होंने मुझे वैदिक धर्म के प्रचार की आज्ञा दिला दी। मैंने यहाँ दस दिन तक प्रचार किया। तीन दिन की यात्रा के बाद मैं जुबीद पहुँच गया।

यह एक ऐतिहासिक नगर है। नगर में घुसने के लिए चार बड़े-बड़े किवाड़ हैं। जुबीद विद्वानों का घर है जहाँ दूर-दूर से लड़के शिक्षा पाने के लिए आते हैं यहाँ कम से कम भी एक सौ अलिम (विद्वान) हैं, जो अपने-अपने घरों में ही अपने लड़कों को पढ़ाते हैं।

सारे यमन में और विशेषतया जुबीद में जाड़ों के दिनों में एक बीमारी फैल जाती है, जिससे शायद ही कोई बचता हो। लोगों ने टट्टी के लिए अपने घरों में कुएं के सदृश गड्ढे खोदे हुए हैं। कुओं के मुँह को ऊपर से बन्द करके केवल थोड़ा से खुला छोड़ देते हैं और हर रोज उसमें पाखाना फिरते हैं। एक टट्टी, जो उनके बाप-दादा के जमाने की खुदी है वह इनसे नहीं भर सकती। फलतः उस कुएं के अन्दर से सख्त बदबू निकलती है और यही बीमारी का कारण है। यमन का मलेरिया बुखार प्रसिद्ध है। पानी इतना खराब है कि कोई बाहर से आया हुआ व्यक्ति यहाँ लगातार दो वर्ष तक ठहर गया तो उसके बाल सफेद हो जाते हैं।

ज्वार की रोटी का यहाँ बहुत रिवाज है। सवेरे बाजरे की रोटी या खजूर खाते हैं। दोपहर को भी वही रोटी या चावल। चावल यहाँ पैदा नहीं होता, भारतवर्ष से जाता है, इसलिए इसे केवल धनी लोग ही खा सकते हैं। एक बोरी चावल दस रुपये से कम में नहीं मिल सकते। सारे यमन में चार बजे सायं के बाद कोई खाना नहीं खाता। रात को खाने से लोग बीमार पड़ जाते हैं।

जुबीद में नीला कपड़ा रंगने के कई कारखाने हैं। यहाँ पर सारे यमन का कपड़ा रंगा जाता हैं। कपड़ा रंगने का कार्य पहले-पहले यहाँ भारतीयों ने आरम्भ किया था और वे अब तक यहाँ बसे हुए हैं। यहाँ जितने अरब 'अलहनूद' के नाम से विख्यात हैं, भारतीयों की सन्तान है। मैंने यहाँ दो सप्ताह तक प्रचार किया।

हुदैदा को प्रस्थान

इसके बाद हुसैनिया बैतअल फिकीह से होता हुआ दो रोज में हुदैदा जा पहुँचा। यह यमन की एक बड़ी बंदरगाह है और लाल समुद्र

के तट पर बसी हुई है। यहाँ भारतवर्ष के बोहरे मुसलमान काफी संख्या में तिजारत करते हैं। कुछ हिन्दु भी तिजारत करते हैं। दस रोज तक मैंने यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार किया और आर्यसमाज स्थापित हो गई।

हुदैदा से बैत अलफिकीह, जुबीद, तइज और सनआ के अतिरिक्त कई और बड़े-बड़े नगरों में तुर्कों के जमाने के तार घर पाये जाते हैं। तार अभी तक तुर्की भाषा में दी जाती है। यदि तार यमन के किसी नगर में करना हो तो दो पैसा शब्द की दर से हो सकता है। यहाँ मास्को रूस के भी लोग तिजारत करते हैं। हुदैदा बंदरगाह से उतरते ही पहली काठी उनकी है। इन्होंने हुदैदा से सनआ तक जहाँ कि बादशाह रहता है, टेलीफोन लगवाया हुआ है।

सनआ को प्रस्थान

मैं यहाँ से मोटर में बैठकर चला गया। यह एक बड़ा शहर है। यमन का दारुलखिलाफा है। यहाँ ही यमन का बादशाह इमाम यहाँ रहता है, जो जदी याने शिया है। सारे यमन मुसलमान तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं, प्रथम जैदी लोग के जिनका शासन है। दूसरे सुन्नी और तीसरे बद्दुओं की एक जाति जरनीका। नगर पहाड़ी है। फल खूल पैदा होता हैं।

मैं यहाँ एक दिन ही रहा था कि तइज से एक सज्जन का तार मिला कि शीघ्र चले जाओ। मोटर सनआ से हुदैदा, बैतअल फिकीह, जुबीद, तइज और अदन तक चलती हैं मगर अभी तक कोई खास पक्की सड़क बनी हुई नहीं है। मैं एक मोटर में बैठकर दो रोज़ में तइज पहुँचा। मुझे एक विवाह में बुलाया गया था। पाँच दिन वहाँ ठहर कर मैं जुबीद लौट पड़ा।

मैं अभी दो ही दिन चला था कि मार्ग में पानी का एक बहुत बड़ा चश्मा मिला। धूप का समय था, मैंने विश्राम किया । खजूर के पेड़ों के नीचे, जो कि थोड़ी दूर नर थे, डेरा जमा दिया। खाना बनाने के लिए चश्मे में से पानी लेने चला। यहाँ एक और छोटा सा स्रोत था। पानी कुछ साफ न था, इसलिए मैंने दो-तीन पत्थर निकाल डाले। उसी समय जमीन से एक ऐसा गर्म पानी का चश्मा निकल आया जैसा कि मैंने कराची के पास मघापीर में देखा था। मैंने पानी लिया और खाना तैयार किया। इतने में एक वृद्ध पुरुष, जिसके शरीर पर फुंसियाँ निकली

हुई थीं मेरे पास आया। बातचीत में उसने मुझसे अपनी फुंसियों का इलाज पूछना चाहा। मैंने उसे उस गर्म चश्मे के पानी से स्नान करने को कहा। उसने वैसे ही किया और थोड़ी देर बाद वह फुंसियाँ सूख गई। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। आन की आन में उसने मशहूर कर दिया कि एक बली (महात्मा) आया हुआ है, जिसने एक ऐसा चश्मा निकाला है, जिसमें नहाने से मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। लोगों के झुण्ड मेरे पास आने लगे। मैंने थोड़े से पत्थर और निकाल कर चश्मे को बड़ा कर लिया। यदि उनमें से किसी को त्वचा (चमड़े) की कोई बीमारी होती थी तो वह उसमें नहाने से ठीक हो जाती थीं। हर रोज वहाँ सदाब्रत जारी रहता था। लोग जितना रुपया मुझे देते थे। उसे मैं इस लंगर में ही लगा देता था। इस प्रकार से पन्द्रह दिन तक लंगर चलता रहा और जंगल में एक नगर सा बस गया। मुझे वैदिक धर्म के प्रचार का भी अच्छा अवसर मिला। पंद्रह दिन के पश्चात् राज्य की ओर से वह चश्मा बंद करा दिया गया, परन्तु मेरा नाम वहाँ बली अल्लाह (महात्मा) पड़ ही गया।

मैं वहाँ से चलकर एक दिन में जुबीद पहुंच गया। जुबीद से पाँच–छह मील दूरी पर एक सफेद मस्जिद है। सुनते हैं कि इसी स्थान पर हजरत मुहम्मद साहिब ने चमन के बादशाह को पत्र लिखा था कि मुझ पर ईमान लाओ वरना तलवार के जोर से मुसलमान बनाये जाओगे। इस पर यमन के बादशाह और यमानियों ने इस्लाम कबूल कर लिया। हजरत मुहम्मद साहिब ने फर्माया था कि अल, ईमान अल यमानियाह दल हिकम:तल यमनियाह याने यमन वालों की दो वस्तुयें प्रसिद्ध हैं, प्रथम यह कि वे धमकी के जोर से इस्लाम पर ईमान लाये, दूसरे यमन वालों की अक्लमंदी। यमन निवासी प्राचीन आर्य थे, जो कि हजरत मुहम्मद के समय से एक हजार वर्ष पहले अपना धर्म भूल चुके थे। जब मैंने उनमें वैदिक धर्म का प्रचार किया तो वे लोग वैदिक सिद्धान्तों को बड़ी श्रद्धा से सुनते और मानते थे।

यमन का पहनावा दो प्रकार का है। यमन के बादशाह का पहनावा अर्थात् हकूमत पार्टी का लिबास यह है। सिर पर एक टोपी, जिस पर तिल्ले का काम किया हुआ होता है। टोपी के ऊपर लिपटा हुआ मलमल का एक कपड़ा, जिसे 'लफा' कहते है। कमीज लम्बी, पाजामा चौड़ा और सिर पर एक चादर। स्त्रियों के बुर्का नहीं होता,

परन्तु कहीं-कहीं मुंह के ऊपर चादर ओढ़ लेती है। व्यवसायी लोगों के सिर पर निवार वेत के छलके की एक लम्बी टोपी होती है। कहीं-कहीं यह एक-एक गज लम्बी होती है, जिसे देखकर हंसी आ जाती है। ऐसी टोपी हमारे यहाँ साँग-तमाशे वाले पहनते हैं। कमीज के स्थान में एक छोटी सी वास्कट और नीचे एक धोती या तहमद बाँधते हैं। स्त्रियाँ लम्बी कमीज, पायजामा और एक चादर ओढ़ती हैं। फसल काटने के समय स्त्री और पुरुष दोनों निवार वेत की हैट लगाते हैं।

यद्यपि जुबीद में आलिम बहुत हैं, परन्तु उनकी जीविका का सुप्रबन्ध नहीं है। तुर्की के समय में इन आलमों को अच्छे वजीफे मिला करते थे, परन्तु अब राज्य की बागडोर जैंदी लोगों के हाथ में है, जो इन लोगों की बात तक नहीं पूछते। इनमें एक विशेषता यह देखी कि दूसरे धर्म वालों से द्वेष नहीं रखते। भारतवर्ष के मुल्ला लोगों को इनसे शिक्षा लेनी चाहिये। जब मौलवियों के गुरु शौकतअली गोलमेज कान्फ्रेंस से फिलस्तीन में आये थे तो वहाँ के अरबों को यूनियन जैंक (अंग्रेजी झंडे) के नीचे रहने की शिक्षा देते थे, जिसका मैं तीसरे परिच्छेद में वर्णन कर आया हूँ। वहाँ से मौलाना साहिब मौसूफ मिश्र में मलिक फव्वाद को यूनियन जैंक के नीचे रहने की शिक्षा देकर यमन में इमाम यहया के पास आ गये। सुलतान यहया ने बावजूद मुसलमान होने के कभी किसी के साथ मिलकर खाना न खाया था। मगर मौलाना साहब पहले व्यक्ति थे जिनके साथ इमाम यमन ने साथ बैठकर खाना खाया था। मौलाना साहिब ने इमाम यमन को यह शिक्षा दी कि वह अंग्रेजों के साथ बीस वर्ष तक मित्रता का सम्बन्ध रखे और उनके साथ तिजारत करे। यह उपदेश करके मौलाना साहिब तो अदन आ गये थे। अदन में तो अकेले अंग्रेजी राज्य है ही, वहाँ से कर्नल रैली सनआ (यमन) में इमाम यहया के पास आया और बीस वर्ष तक अंग्रेजों से मित्रता का सम्बन्ध और तिजारत का मुआहिदा करके वापिस आ गया। यहाँ बिल्ली और चूहे की मित्रता हो गई। अब यमन वाले मौलाना साहिब को रो रहे हैं। अदन से सारे यमन में मोटरों का ताँता सा बंधा रहता है। कैमरों से वहाँ के फोटो उतारे जाते हैं और हवाई जहाज तो मंडराते ही रहते हैं।

जुबीद में एक अरबी की यूनिवर्सिटी है जहाँ कि मुफ्ती का इमतिहान दिया जाता है। यहाँ मैंने तीन मास तक मुफ्ती की परीक्षा की

तैयारी की थी और पास भी की थी। जिन दिनों मैं इस परीक्षा की तैयारी कर रहा था उन दिनों इमाम यमन और जलालातलमलिक इबनसऊद में सीमाओं के बारे में विवाद हो रहा था। जरनीक कबीला, जो सारे यमन के छोटे-छोटे देहातों में आबाद हैं, उन्होंने लूट मार आरम्भ कर दी, जो कोई जुबीद से एक मील भी दूर जाता था, लूट लिया जाता था। तीन दिन तक यही दशा रही। हुदैदा से जुबीद तक, जो कि पैदल के लिए कम से कम तीन दिन का रास्ता है, किसी का राज्य न रहा। तीसरे दिन कुफफदा से इबनसऊद की फौजें भागती हुई हुदैदा में आ गई और इन्होंने अपना राज्य स्थापित कर लिया। जलालातलमलिक के कुछ आदमियों ने बैतुलफिकी पर भी अधिकार कर लिया। हुसैनियाह, जो कि जुबीद से पैदल ढाई घंटे का मार्ग वहाँ भी इबनसऊद कब्जा हो गया अमीर अल्लाई (कर्नल) ने अपनी रक्षा के लिए तइज के अलअमीर को तार दिया कि शीघ्र से शीघ्र एक फौज को भेज देवें। तइज से जुबीद तक पैदल के लिए चार दिन का मार्ग है, इसलिए चार दिन के उपरान्त एक पाँच सौ आदमियों की फौज आ पहुँची। इस फौज में सब शीआ लोग थे, जो वहाँ के हाकिम हैं। अब सनआ से तइज तक, जो पहाड़ी इलाका है और जहाँ जैदी जाति के लोग बसते हैं उनमें भर्ती आरम्भ हो गई। हर रोज जुबीद में दो तीन सौ जैदी सिपाही आ जाते थे। जब जैदी लोग तइज से जुबीद तक चलते तो मार्ग के छोटे-छोटे गावों से बलात् रोटी और कहवा लेते थे। यदि कोई गाँव वाला रोटी देने से आना-कानी करता तो फौरन उसके गाँव को जला दिया जाता था, इसलिए उन दिनों में रास्ते के ग्रामीण ग्रामों को छोड़कर भाग गये थे। जब इमाम यमन की चार हजार के लगभग फौज जुबीद में आ गई तो यमन के सिपाहियों ने ही जुबीद के बाजार को लूट लिया। जैदी लोगों के घरों में पच्चास-पच्चास फौजी ठहराये गये और रोटी का खर्च घर वाले के जिम्मे होता था। मस्जिदों में खच्चर तक बँध गये। जुबीद में कहीं तिल रखने को स्थान न था। जिधर देखों जैदी फौजी दिखाई देती थी। लोग डर के मारे बाजार और घरों तक के दरवाजे बन्द किये रखते थे। लोगों पर ऐसा भय छाया हुआ था कि किसी की ताकत न थी कि घर से बाहर निकल कर कुएं से पानी ला सके। दो दिन तक तो ऐसी ही दशा बनी रही। मैं भी एक अरब आलिम के घर में छिपा रहा, परन्तु आखिर हमारा पानी समाप्त

हो गया। अब तो सिवाय बाहर निकाल कर पानी लाने के कोई चारा न था। मैंने बाहर पाँव रखा ही था कि कुछ जैदी सिपाहियों ने मुझ घेर लिया और बोले कि अपने घर से पाँच चारपाइयाँ लादो। पहले तो मैं घबराया, परन्तु फौरन एक विधि सूझी। मैंने उनसे अकड़ कर कहा कि तुम क्या जानते नहीं कि मैं हिन्दी हूं और अँग्रेजी प्रजा हूँ? यदि तुम मुझे कष्ट दोगे तो निश्चय तुम्हारा अंग्रेजों से बिगाड़ हो जाएगा और वे यहाँ पर अधिकार कर लेंगे। कई अरबी लोग भारत वर्ष में बसे हुए हैं, यदि तुम मुझे किसी प्रकार की हानि पहुँचाओगे तो यमानी प्रजा भारत वर्ष में मार दी जायेगी। मेरी इन बातों से वह डर गये और उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मैंने पानी निकाला और अरब आलिम को लाकर पिलाया।

पानी पीते ही अरब आलिम को कुछ होश आया। उसने एक पत्र जुबीद के अमीर अल लाई (कर्नल) के नाम लिखा कि जैदी फौज ने बाजारों और घरों में लूट मचा रखी है। कोई व्यक्ति घर से बाहर नहीं निकल सकता, इसलिए शान्ति स्थापित की जावे। पत्र ले जाने के लिए उन्होंने मुझे ही भेजा, क्योंकि मैं पहले ही जैदी फौज के बीच में से पानी ला चुका था। अमीर अललाई, जिसको यह पत्र लिखा गया था मुझसे परिचित था, क्योंकि जब वह जुबीद में आया था तो मैं उसके स्वागत के लिए गया था। वह नित्य मुझसे एक घण्टा तक भारतवर्ष का समाचार और वैदिक धर्म के सिद्धान्त पूछता रहता था।

मैं वह पत्र लेकर अल अमीर, अललाई के पास पहुँच गया और उससे सारा समाचार कह सुनाया। उसने सारी जैदी फौज, जो मस्जिदों, बाजारों और घरों में पड़ी थी, वापिस बुला लिया। एक खुले मैदान में उनको डेरा डालने की आज्ञा दे दी गई। अब उन्हें बाजार जाने की आज्ञा न थी।

मैंने परीक्षा के लिए हजरत अलअमीर अललाई से कहा कि जलालातलमलिक इबनसऊद की फौज, जिसमें दो सौ सिपाही से भी कम होंगे, यहाँ से पैदल ढाई घंटा की यात्रा पर हुसैनिया नामी गाँव में पड़ी है, उसके साथ जंग की जावे। इस पर हजरत ने उत्तर दिया कि नहीं हम उसके साथ पहल नहीं करना चाहते। यदि इबनसऊद की फौज जुबीद पर आक्रमण करेगी तो हम उसका उत्तर दे सकते हैं, परन्तु मैं जानता था कि चार हजार जैदियों में इतनी भी शक्ति नहीं कि इबनसऊद के दौ सौ सिपाहियों का मुकाबिला कर सके।

जब इन दोनों में घमासान की जंग छिड़ गई थी और जैदी फौज हार पर हार खा रही थी। उस समय मिश्र और फिलस्तीन के कुछ बड़े-बड़े आदमी मक्का में जलालातलमलिक अब्दुल अजीज इबनसऊद के पास संधि के लिए गये थे। सुलतान इबनसऊद ने, जो कि एक सरल हृदय मनुष्य है, संधि की शर्त मंजूर कर ली और अपने वजीर को संधि के लिए उन आदमियों के साथ भेज दिया। उस समय जबल असीर से हुदैदा, बैतअल फिकीह और हुसैनियाह तक इबनसऊद की हकूमत हो चुकी थी। इतने पर भी इबनसऊद ने इमाय यमन का सारा प्रवेश उसे लौटा दिया और संधि हो गई। संधि होने के कुछ दिन पश्चात् मेरी परीक्षा के दिन थे। मैं परीक्षा में बैठा और पास हो गया।

अदन को वापिसी

वहाँ से एक मोटर अदन को जा रही थी। मैं उसमें बैठ कर तइज मुआवियाँ खंदक से होता हुआ दो दिन में लइज जा पहुँचा। यहाँ मुझे सुलतान फजल बिन अब्दुल करीम और शाहजादा अली ने रोक लिया। मैं इन इलाकों में पहले भी प्रचार कर चुका था और अब भारतवर्ष लौटने को जी चाहता था, इसलिए अधिक समय यहाँ ठहरना उचित न समझता था। दो दिन यहाँ ठहर कर शेख उसमान चला गया। यहाँ भी एक दिन ठहरना पड़ा। इसके बाद अदन चला गया और वहाँ चार दिन तक ठहरा।

मोकल्ला को वापिसी

नाव में सवार होकर मैं मोकल्ला के लिए चल पड़ा। समुद्र में लहरों पर लहरें उठती थी जिनसे नाव के उलटने का भय था। मेरे साथ, जो सवारियाँ बैठी हुई थी उनका बुरा हाल था। नाव ऊपर-नीचे दायें-बायें हिचकोले खा रही थी, जिससे सबको चक्कर आ रहे थे। मुझे तो इतना कष्ट नहीं हो रहा था, क्योंकि मुझे अब नाव में बैठने का छह सात वर्ष का अभ्यास हो चुका था। इतनी कुशल हुई कि सब अन्त में कुशलता पूर्वक मोकल्ला में जा उतरे।

मोकल्ला से मनकरोल तक पहाड़ी इलाका है। कभी तो इतनी ऊंची पहाड़ी आ जाती है कि चढ़ना मुश्किल हो जाता है। सारा मार्ग सुनसान सा है और तमाम रास्ते पर पानी बहुत दूर-दूर पर मिलता है। कोई कुआँ या चश्मा मार्ग में नहीं पड़ता। प्रायः पानी की तलाश में रास्ता छोड़कर दायें-बायें दूर-दूर तक जाना पड़ता है। मोकल्ला में मैं

दो दिन तक ठहरा। इसके बाद आठ दिन में मनकरोल की बंदरगाह में पहुँच गया।

जुफार को वापिसी

मनकरोल से जुफार पैदल तीन दिन का मार्ग था। मैं जुफार के लिए पैदल चल पड़ा। एक दिन की यात्रा पर कुछ बद्दू लोग मिले। यहाँ एक पानी का चश्मा था। बद्दू लोग अपनी ऊँटनियों को पानी पिला रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि जुफार यहाँ से दो दिन का मार्ग है, परन्तु रास्ते में कोई आबादी नहीं है। और न कहीं पानी ही मिलता है। मैंने दो दिन का पानी उठा लिया। चलते समय बद्दुओं ने मुझे एक केटली दूध से भरकर दी और कुछ खजूरें भी दी। मैं ये लेकर बिदा हुआ।

थोड़ी दूर गया था कि देखा एक स्थान से बहुत से रास्ते निकलते हैं। मैंने एक मार्ग पकड़ लिया। चलते–चलते शाम के समय मैंने अपने आपको एक जंगल में पाया। उस पहाड़ी चश्मे से जहाँ मैं बिदा हुआ था जुफार तक ऐसा जंगली रास्ता मिला कि ऐसा मैंने सारे अरब में नहीं देखा था। जब शाम हो गई तो मार्ग का निशान भी मिलना बन्द हो गया। साथ ही जंगली पशुओं का डर था, जो यहाँ बहुत थे। मैंने दिन छपने से पहले ही लकड़ियाँ इकट्ठी कर ली और इनसे आग जलाई। मेरे पास, जो समान था उससे खाना पकाया और खाया। दूध की केटली, जो मेरे पास थी उसका आधा दूध सोते समय पी लिया और शेष आग के पास रख दिया। जब मैं सो गया तो आग के सेंक ये आधी रात को मुझे प्यास लगी। मैंने वह बाकी दूध भी उठाकर पी लिया और फिर सो गया। थोड़ी देर में मुझे बुखार की गर्मी मालूम होने लगी। रात ज्यों–त्यों काटी। सवेरे उठा तो मुझे सख्त बुखार चढ़ा हुआ था। चलना मुश्किल था, परन्तु मैंने अपना सामान लेकर आगे बढ़ना ही उचित समझा। जब केटली को देखा तो सारी केटली च्यूंटियों से भरी हुई थी। अब मुझे अपने बुखार का कारण मालू हो गया, जो दूध मैंने आधी रात को उठकर पिया था, उसमें च्यूटियाँ थी। मैं सामान लेकर चल पड़ा।

मुश्किल से एक मील चला हूंगा कि बुखार हो गया और जाड़ा लगने लगा। मैंने एक पेड़ के नीचे डेरा लगा दिया। चाय बनाई और पी ली, परन्तु पीते ही बेहोश होकर गिर पड़ा। च्यूटियों का विष सारे शरीर में फैल चुका था। दो दिन तक मैं वहीं पर पड़ा रहा। सारा पानी

समाप्त हो चुका था। बुखार के मारे जोर की प्यास लग रही थी, इसलिए तीसरे दिन फिर चलना पड़ा। एक मील और चला था कि एक सख्त घने जंगल में फंस गया। वहाँ मेरे तमाम कपड़े फट गये। बड़ी कठिनता से वहाँ से निकला और एक ऊंची पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गया और रात को वहाँ सोया।

पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर देखा तो कहीं आदमी का नाम निशान नजर न आता था। चौथे दिन इस पहाड़ी के पश्चिम की ओर चला। शाम के समय फिर घना जंगल आ गया, वहाँ बद्दुओं के पुराने झोपड़े थे, परन्तु पास जाकर देखा तो उनमें एक भी मनुष्य न था। रात को मैं उनमें ठहरा और पांचवें दिन चल कर वापिस उस पहाड़ी की चोटी पर आ गया।

शाम को एक ऊँट दिखाई दिया, परन्तु उसके साथ कोई मनुष्य न था, जिससे मैं पानी का पता पूछता। रात को यहाँ रहा। बिना पानी के अब मेरा छठा दिन आरम्भ हो गया और मृत्यु दिखाई देने लगी। जब तक सांस तब तक आस। मैंने पिता परमात्मा से प्रार्थना की कि यदि मुझे एक बार भारतवर्ष में पहुंचा दो तो मैं वहाँ से अपनी पूरी शक्ति के साथ वापिस अरब में आकर आपकी कल्याणकारी वाणी वेदों का प्रचार कर सकूँ। ईश्वर को स्मरण करने बाद मुझे अपने अन्दर किसी शक्ति का आभास हुआ। मैंने उठकर देखा तो पहाड़ी से नीचे की ओर उतराई का रास्ता था। नीचे एक मैदान था और मैदान के पास एक दूसरी पहाड़ी थी। उसमें मुझे एक गुफा दिखाई दी। मैंने झटपट उतरना आरम्भ कर दिया और उस गुफा में जा पहुँचा। वहाँ पर देखा तो मालूम हुआ कि वह गुफा किसी समय में बद्दुओं का घर था, क्योंकि बकरियों की मेंगनियाँ पड़ी हुई थीं, परन्तु इस समय वहाँ कोई न था। मैं निराश होकर वहीं लेटा रहा।

जब मैं वहाँ लेटा हुआ था तो मेरे हाथ के ऊपर पानी की एक बूंद आ पड़ी। मैंने ध्यान से ऊपर की ओर देखा तो मालूम हुआ छत में से पानी टपक रहा है। मैंने थैले में से एक बर्तन निकाल कर नीचे रख दिया और भरने की इन्तजार करने लगा, परन्तु पंद्रह मिनट के बाद कहीं एक बूंद गिरती थी। दो घंटे के बाद मुश्किल से आठ-दस बूंदे गिरी जिन्हें मैंने जबान से चाट लिया। बहुत देखने पर भी मैं यह न मालूम कर सका कि यह पानी क्यों और कहाँ से आ रहा है।

वहाँ से निकलने के बाद चार–पाँच कदम ही चला था कि एक और गुफा दिखाई दी। उसके पास जाकर देखा तो गुफा के पास एक जंगली मूली उगी हुई है। बड़ी मुश्किल से इस मूली के दो–चार पत्ते खाये थे कि बेहोश हो गया। दोपहर को जाकर मेरी आँख खुली। मेरा शरीर बहुत शिथिल हो चुका था। मुझे ख्याल आया कि मैं अपना असबाब आगे की पहाड़ी पर छोड़ आया हूँ। मैं नंगे सिर और नंगे पैर केवल एक पाजामा और कमीज पहने हुए वहाँ से चल दिया। गिरते पड़ते पहाड़ों की चढ़ाई–उतराई करते शाम के समय मुझे समुद्र का किनारा दिखाई दिया। कुछ आशा बंधी कि दिन में आठ–दस बार स्नान करने से प्यास कम हो जाएगी और यदि कोई नाव जाती हुई दिखाई दे जायेगी तो शायद जान भी बच जाये। चलते–चलते रात हो गई। प्यास के मारे गले में काँटे पड़ गये थे। मुझे विश्वास था कि यदि कल सवेरे तक पानी न मिला तो मृत्यु निश्चित है, इसलिए मैं रात को भी चलता रहा। रात इतनी अँधेरी थी कि हाथ नहीं सुझाई देता था।

जब मैं खड़े होकर न चल सका तो हाथो और पाँवों के बल रेंगने लगा। आधी रात के समय मेरे कान में ऐसी आहट आई जैंसे पानी का चश्मा बह रहा हो। बड़े ध्यान से देखने पर मालूम न हो सका कि आवाज किधर से आ रही है। आखिर में वहीं पड़ कर सो गया। सवेरे उठा तो देखा कि निर्मल जल का एक स्रोत पहाड़ी से बहता हुआ समुद्र की ओर जा रहा है। मैं एक चट्टान पर था और चश्मा चार गज नीचे बह रहा था। नीचे जाने का कोई रास्ता न था। मैंने वहाँ से छलांग लगाई। कमजोरी इतनी थी कि छलाँग लगाते ही मेरी पीठ जख्मी हो गई, परन्तु मैं चश्मे के पास पहुँच गया और पिता परमात्मा का कोटि–कोटि धन्यवाद किया। आज मेरी प्यास का सातवाँ दिन था। गले में ऐसे छाले पड़ गये थे कि पानी उनको छुरी के सदृश काटता था।

संयोग से कुछ बद्दू लोग अपनी बकरियाँ चराते हुए इस चश्मे पर आये। उनकी गुफाएँ कोई आध मील की दूरी पर थी। उन्होंने मुझे दूध पिलाया और अपने साथ ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मेरी बहुत सेवा की। मैं तीन दिन तक उनके पास ठहरा। सत्संग हर रोज होता था। उनके अपने कुम्बे के अठारह आदमी तो थे ही, इनके अलावा और भी बहुत से लोग रात के समय जमा हो जाते थे और प्रचार के समय अच्छा खासा जमघट हो जाता था।

संयोग से एक अरब मौलवी भी अपने ऊँटों को चराने के लिए वहाँ आये, क्योंकि वहाँ चश्मा था और ऊँटों को पानी पिलाने का अच्छा प्रबन्ध है। रजमान याने रोजा रखने का आरम्भ होने वाला था। एक रात को मौलवी साहब ने बद्दुओं को बताया कि कल रमजान आने वाला है, दिन में कुछ मत खाना। यह कह कर ''लाहौरलवला'' कहा और अपनी गुफा की ओर चल दिये।

बाद में बद्दुओं ने मुझसे पूछा कि कल क्या बला आने वाली है, जो हमें दिन के समय खाने न देगी और यह बला किस ओर से आयेगी। यह तो मैं जानता था कि ये लोग नमाज़, रोजा और कुरान को नहीं समझ सकते, इसलिए मैंने उनसे कह दिया कि वह बला कल शाम को पश्चिम की ओर से आयेगी।

सवेरा होते ही बद्दु लोग जंगल में बकरियाँ चराने गये। शाम को उन्हें एक ऊँटनी और उसका बच्चा पश्चिम की ओर से आते दिखाई दिये। उन्होंने समझा कि यह वही बला है, जिसका मौलवी साहब ने जिक्र किया था। उन्होंने उस ऊँटनी को मार डाला। जब रजमान मर गई तो ''लाहौल'' की तलाश हुई। उन्होंने ऊँटनी के बच्चे को ''लाहौल'' समझ कर मार डाला और खुशी-खुशी घर लौट आये।

शाम के समय जब हम सब आग के गिर्द इकट्ठे बैठे तो मौलवी साहब बोले आज रात को खूब पेट भर खाना खा लो, क्योंकि कल सुबह तुम्हें कुछ खाने को नहीं मिलेगा। आज चाँद दिखाई दे गया है और कल से रमजान है। इस पर बद्दू बोले कि हमने तो रमजान को मार दिया है। मौलवी साहब ने झट लाहौलवला कहा। बद्दुओं ने कहा लाहौलवला को भी मार दिया है। मैं हैरान था कि माजरा क्या है ? सारा किस्सा ध्यानपूर्वक सुनने पर मालूम हुआ कि बेचारे मौलवी साहिब की ऊँटनी और बच्चा मारा गया है। बेचारे मौलवी साहिब बहुत सटपटाये, परन्तु क्या हो सकता था। सच तो कहा है—

शिक्षा वा को दीजिये, जा को सीख सुहाय।
सीख न दीजे बान्दरा, जो बये का घर जाय॥

रोजे रखने के विषय में तो अरब के शिक्षित समुदाय की एक नई राय है कि बजाय इसके कि लगातार एक मास तक भूख मारी जाये, प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होना चाहिये कि उसे जब आवश्यकता पड़े उस समय रोजा रखे। इस प्रकार सारे साल में कुल तीस रोजे रखे

जाएँ।

मुझे वहाँ बद्दुओं के यहाँ रहते हुए तीन दिन हो चुके थे। मैं पहले सात दिन भूख प्यास के कारण बहुत कमजोर हो कर आया था। उन्होंने मेरी बहुत सेवा की। मेरी दूध की केटली हर समय आग पर रखी रहती थी। मैंने खूब मलाई खाई और दूध पिया, जिससे कमजोरी दूर होने लगी। कभी-कभी वे मुझे चावल भी दे देते थे। बद्दु लोग स्वयं खजूर खाते थे। उनके पास जितने भी चावल थे, मुझे दे दिये थे। वे मुझे बली अल्लाह मानते थे और कहते थे कि तुम सदैव हमारे पास ठहरो और हमें हिजबुल्लाह की तालीम दिया करो। मुझे बद्दुओं ने बताया कि जिस गुफा में पानी टपकता था, उस गुफा के ऊपर थोड़ा सा पानी था, जिस गुफा में मैंने अपना माल छोड़ा था। उसका पता निशान बद्दुओं को बताया। वे लोग झट गये और उस गुफा में से मेरा सामान उठा लाये। मेरे पास जितने कीमती वस्त्र थे मैंने उनको दे दिये। जब मैं अदन से चलने लगा था तो एक सज्जन ने मुझे दस-दस के दो नोट दिये थे। वे मेरे पास थे। मैंने खुशी से उनको ये नोट दे दिये और उनसे कहा कि यह बीस रुपये हैं, ले लो। वे सब उन नोटों को देखते थे और हँसते थे। वे कहते, ये तो कागज है ला तज हक माना अर्थात् हमारे साथ हँसी मत करो। उनको मैंने विश्वास दिलाया कि जुफार, जो कि यहाँ से दो दिन का रास्ता है वहाँ से तुम्हें इनके बदले में बीस रुपये मिल जावेंगे, परन्तु उन्होंने बिल्कुल न माना और वे दोनों नोट मुझे लौटा दिये। संयोग से जुफार की ओर जाने वाली एक नाव उधर से गुजर रही थी। उनका पीने का पानी समाप्त हो चुका था, इसलिए वे इस चश्ने से पानी लेने के लिए आये। उन्होंने कहा कि हमारे साथ नाव में बैठकर चलो। हम तुम्हें जुफार उतार देंगे। मैं इन बद्दुओं से मिलकर नाव में सवार होकर जुफार पहुँच गया और परमात्मा का धन्यवाद किया। मेरे यहाँ पहुँचते ही सब लोग इकट्ठे हो गये। एक दिन यहाँ ठहर कर नाव में सवार हो मर्बात जा पहुँचा।

मसीरा टापू को प्रस्थान

मर्बात से नाव में बैठकर छः दिन में मसीरा टापू में जा पहुँचा। इस टापू में बद्दू लोग बसे हुए है। उनका बादशाह सुलतान कासिर है, जो नेक दिल और न्यायकारी बादशाह है। मैंने वहाँ सात दिन तक वैदिक धर्म का प्रचार किया। यह एक छोटा-सा टापू है। कहीं-कहीं

पर वर्षा होने पर ज्वार की खेती होती है। यहाँ स्कूल एक भी नहीं है। यहाँ पर भारत वर्ष आने के अभिप्राय से मैंने अरबी वेश कर लिया, क्योंकि बगैर पासपोर्ट के था।

भारतवर्ष को वापिसी

इसी समय सुलतान कासिर की नाव भारत वर्ष बम्बई में चावल व अनाज लेने आ रही थी। सुलतान ने मुझे भी नाव में बिठा दिया। मेरा अरबी पहनावा होने के कारण मुझे कोई हिन्दी नहीं कह सकता था। वायु तेज होने से नाव धीरे-धीरे चल रही थी। तेरहवें दिन पीने का पानी समाप्त हो गया और हम सब चिन्तित हुये। कुशल हुई कि अगले दिन ही किनारा दिखाई दिया और हम मनकरोल बन्दरगाह, जो काठियावाड़ (भारतवर्ष) में है, वहाँ १५ फरवरी सन् १९३६ को पहुंच गये। मैंने पिता परमात्मा को अनन्य धन्यवाद दिया जिसकी कृपा से लगभग सात वर्ष के बाद मैंने अपनी मातृभूमि पर पांव रखा। यहाँ मनकरोल में किसी ने मुझसे पासपोर्ट न पूछा। मेरे पहनावे से मुझे भी उन्होंने अरबी समझा। उतरने से पहले मैंने अरबी भाइयों को पानी, लकड़ी, अनाज और कुछ फल दिये। अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैंने उनकी सेवा की। मैंने उनको किराया भी देना चाहा, परन्तु उन्होंने कुछ भी लेना स्वीकार न किया। वे खुशी-खुशी बम्बई की ओर चल पड़े। ''सईदा''(नमस्ते) कहकर हम एक-दूसरे से विदा हो गए। यहाँ इस पुस्तक का सातवाँ परिच्छेद सात मास पन्द्रह दिन की यात्रा समाप्त होता है।

भारतवर्ष

मनकरोल से अजमेर, दिल्ली, फिरोजपुर तक बगैर रेलवे टिकट के मैंने सफर किया। फ़िरोजपुर से लाहौर का टिकट खरीदा और २६ फरवरी, सन् १९३६ को लाहौर पहुँच गया। लाहौर पहुँचकर मैंने परमपिता का फिर धन्यवाद किया और अपने पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के चरणों में सिर झुका दिया। पूज्य आचार्य जी ने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा—कि मैंने प्रतिज्ञा पूर्ण की है और कर्तव्य का पालन किया है, परन्तु अभी बहुत कुछ काम करना बाकी है। जब मैं अपने गाँव जंडाँ वाला जिला मियावाली में पहुँचा तो घर से चले हुए मुझे पूरे सात वर्ष हो चुके थे। मेरे पीछे ही मेरे पिता जी का देहान्त हो चुका था। मुझे इस बात का शोक रहा कि मैं अन्तिम समय में पिता जी के दर्शन न कर सका। इतने दिनों पश्चात् अपनी बृद्धा माता और बहन-भाइयों से मिलकर जो प्रसन्नता हुई वह वर्णन नहीं कर सकता। वे सब यही समझ रहे थे कि मैं मर गया हूँगा।

इन सात वर्षों में मेरे छोटे-छोटे भतीजे और भानजे इतने बड़े हो चुके थे कि पहचानने में न आते थे। गांव के भोले-भाले लोग मुझसे पूछते कि सात साल में कितना रुपया इकट्ठा कर लाये हो? परन्तु जब मैंने उन्हें अपने प्रचार का वृत्तान्त सुनाया तो बड़े प्रसन्न हुए। इन सात वर्षों में मैंने अपने घर पर एक भी पत्र न भेजा था, न उन्हें बतला कर ही चला था। सात वर्ष के बाद जब एकाएक मैं घर में आ घुसा तो वे सचमुच हैरान रह गये।

अन्तिम निवेदन

अरब में जहाँ-जहाँ मैंने वैदिक धर्म का प्रचार किया है वहाँ-वहाँ आर्योपदेशकों को भेजकर आर्यसमाज का प्रचार जारी रखना आवश्यक है। मैं जब से भारतवर्ष लौटा हूँ, इसी प्रयत्न में लगा हुआ हूँ कि वहाँ उपदेशक भेजे जाएँ। यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो अवश्य फिर अरब जाकर प्रचार का कार्य करूँगा।

पहले मेरा यह पुस्तक लिखने का इरादा नहीं था, परन्तु जीवन का भरोसा नहीं है। किताब लिखने से आर्यजगत् के पास अरब में

वैदिक धर्म के प्रचार का नक्शा मौजूद रहेगा। आशा है यह पुस्तक भविष्य में अरब जाने वालों के लिए मार्ग प्रदर्शक होगी। कुछ मित्रों के आग्रह पर आज ता० १७ मार्च, सन् १९३६ ई० बुधवार ५ फाल्गुण सम्मत १९९३ विक्रमी को पहाड़तली जिला चिटागाँग (बंगाल) में अरब में सात साल नामी पुस्तक लिखकर हवन यज्ञ करके परमात्मा की भक्ति के साथ समाप्त करता हूँ।

॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

❑❑❑